केरल ज्योति

जून 2023

ISSN 2320-9976
UGC Care - List Sr. No.58

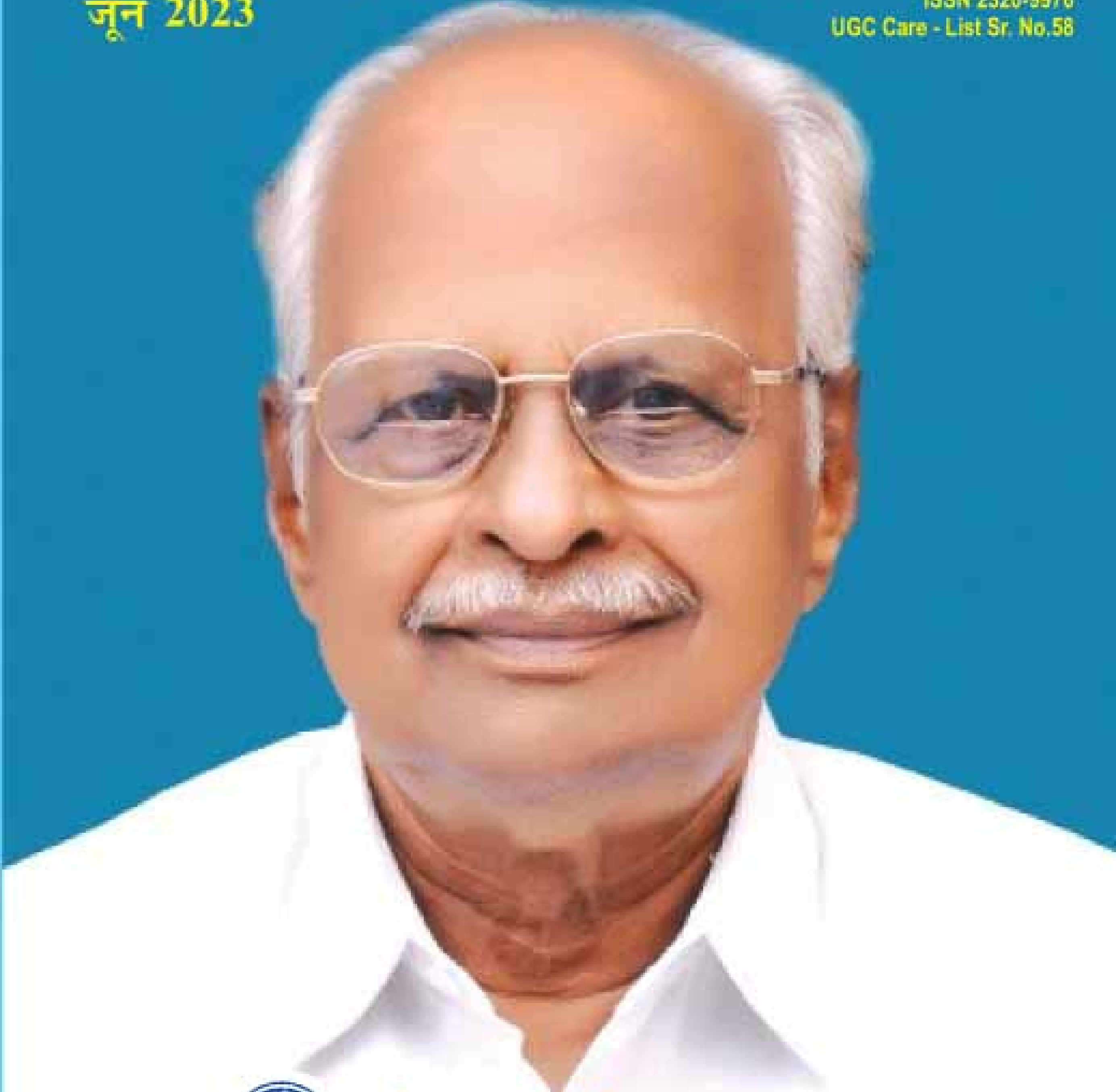

ISO 9001: 2015

केरल हिंदी प्रचार सभा
तिरुवनंतपुरम

सुगम हिंदी परीक्षा (सी बी एस ई)
के सम्मान वितरण के दृश्य

सुगम हिंदी परीक्षा के सम्मान वितरण सम्मेलन का उद्घाटन
श्री.अब्दु समद समदानी एम पी मलप्पुरम में कर रहे हैं।

मुख्य भाषण दे रहे हैं
श्री.टी.वी.इब्राहि एम.एल.ए.

कोंडोट्टी नगरसभा अध्यक्ष श्रीमती फातिमा सुहरा बीवी पी.पी.
सम्मान वितरण कर रही हैं।

श्री.अब्दु समद समदानी द्वारा सम्मान वितरण के दृश्य

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो.(डॉ). एन.रवींद्रनाथ
डॉ. के.एम. मालती
प्रो.(डॉ). जयश्री.एस.आर
प्रो.(डॉ.) आर. जयचन्द्रन

परामर्श मंडल

डॉ.तंकमणि अम्मा एस
डॉ.लता पी
डॉ. रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक/संपादकीय दायित्व

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजित रविशैलम

संपादकीय मंडल

सदानन्दन जी
श्रीकुमारन नायर एम
प्रो.रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 60 दल : 3 अंक: **जून 2023**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

डॉ. वेल्लायणी अर्जुनन : एक लघु परिचय - **अधिवक्ता मधु.बी** 6

मानस कैलास **मूल : मंजु वेल्लायणि**
अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम 7

मतदाता (कविता) - **डॉ.नवीना.जे.नरित्तूक्किल** 8

मृत्यु के इस पार और उस पार
(कुंवर नारायण एवं पी.रविकुमार का तुलनात्मक चिंतन)-
डॉ. मधु वासुदेवन 9

'आंगन की चिड़िया' में नई पीढ़ी की मानसिकता में आए बदलाव
डॉ. आषा.जी 14

"द्रोणाचार्य एक नहीं" में अभिव्यक्त दलित चेतना - **डॉ. जयश्री.ओ** 16

स्त्री संघर्ष : केदारनाथ सिंह की कविताओं में - **कीर्ती.एस** 20

सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में दलित नारी संघर्ष
पद्मप्रिया.वी 24

युवा पीढ़ी (कविता) - **ज्योति चेल्लप्पन** 27

मानवीय संबंधों का यथार्थवादी चित्रण भीष्म साहनी
की कहानियों में - **डॉ.रीनाकुमारी.वी.एल** 28

मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानियों में नारी-संवेदना-**रिने मरिअम अब्रहाम** 33

संग समय के साथ चल (कविता)- **श्रीनिधी शिवदासन** 35

दलित साहित्य : अवधारणा एवं अनुशीलन - **दिव्या.एम.एस** 36

समकालीनता को पुनर्भाषित करती मंडलोई जी की कविताएँ
केसरबेन राजपुरोहित 38

'पहला पडाव' उपन्यास में सामाजिक पक्ष की अभिव्यक्ति
डॉ. प्रियाराणी.पी.एस 42

नासिराशर्मा की कहानियों में नारी अस्मिता के प्रश्न - **डॉ.वीणा.जे** 47

कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में चित्रित नारी - **सुलोचना. के** 50

उत्तराधुनिक स्त्री की आशा और आशंकाएँ

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 53

मुखचित्र : स्व. डॉ. वेल्लायणी अर्जुनन

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/-   आजीवन चंदा : रु. 2500/-   वार्षिक चंदा : रु. 250/-

A /c No. 57022786007   IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Brnach

अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : मुख्य संपादक : 9995680289 संपादक : 7898515222

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.com

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
जून 2023

संपादकीय

स्व. डॉ.वेल्लायणी अर्जुनन को शत शत प्रणाम

मलयालम साहित्य एवं शोध के क्षेत्र में अत्यंत महान उपलब्धियों से अनुगृहीत डॉ.वेल्लायणी अर्जुनन भाषा प्रेमियों को दुख के गहरे गर्त में डालते हुए ब्रह्मलीन हुए। जिस समय उनकी मृत्यु हुई थी तब वे नब्बे पार चुके थे। इसलिए उनकी मृत्यु को आकस्मिक कहना अनुचित होगा, फिर भी उनके स्नेही जनों के लिए अपार दुख का विषय है। इन पंक्तियों के लेखक को उनके साथ 70 साल के ऊपर का परिचय है। हिंदी प्रचार सभा के पूर्व मंत्री स्व.एम.के. वेलायुधन नायर तथा मैं वर्षों के पहले तिरुवनंतपुरम में स्थित चाला इंगलिश हाई स्कूल में अर्जुनन के सहपाठी रहे। उन दिनों में ही अर्जुनन जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे और उनमें साहित्य एवं कलाओं के प्रति विशेष रुचि थी। मुझे स्मरण है कि जब वे हाई स्कूल के छात्र थे उन्हीं दिनों में उन्होंने अपना मलयालम कविता-संग्रह प्रकाशित किया। बाद में उनका कर्मक्षेत्र अत्यंत व्यापक बन गया था और वे कई विशिष्ट पदों पर रहे थे, इस कारण उनके कवित्व-व्यक्तित्व का ज्यादा विकास नहीं हो पाया।

सर्वप्रथम केरला लेक्सिकन विभाग में उन्होंने सेवा की। फिर कोल्लम में स्थित एस.एन.कॉलेज में मलयालम विभाग के प्राध्यापक रहे। तदनंतर 1961 में अलीगढ विश्वविद्यालय में दक्षिण भारतीय भाषा विभाग के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने अपना कार्यभार संभाला। उसके बाद कोट्टयम महात्मागाँधी विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ कम्म्यूणिकेशन एँड इन्फरमेशन साइन्स में निदेशक, भाषा इंस्टिट्यूट निदेशक, साक्षरता मिशन निदेशक आदि पदों में भी स्तुत्य सेवा की है। उनकी सर्वाधिक श्रेष्ठ देन विश्व कोश और मलयालम महानिघण्टु के निर्माण में है।

भारत के बहुभाषी पंडितों में डॉ.वेल्लायणी अर्जुनन अग्रगण्य है। उनमें मलयालम, अंग्रेज़ी और हिंदी में समान अधिकार है। इन तीनों भाषाओं में उन्होंने स्नातकोत्तर उपाधियाँ पाई हैं तेलुगु, कन्नड़, तमिल आदि भाषाओं में डिप्लोमा की उपाधियाँ भी पाई हैं। वे एक पी.एच.डी और तीन डी लिट पानेवाले अपूर्व व्यक्तित्व है।

शैक्षणिक क्षेत्र में निरंतर व्यस्त रहने के बावजूद साहित्य के क्षेत्र में भी उनकी महती भूमिका रही है। कविता, कहानी, जीवनी, बालसाहित्य, आलोचना जैसी विधाओं में उनकी चालीस से अधिक श्रेष्ठ रचनायें प्रकाशित हुई हैं। उनकी विशिष्ट सेवाओं के लिए अनेक पुरस्कारों से भी वे नवाजे गये हैं। इन पुरस्कारों में रेडक्रॉस सोसाइटी का परमाचार्य पुरस्कार, केरल हिंदी साहित्य अकादमी का राष्ट्रीय एकता पुरस्कार, श्रेष्ठ विश्वकोश निर्माण के लिए केंद्र सरकार का पुरस्कार और केरल सरकार के तीन पुरस्कार आदि सम्मिलित हैं। सन् 2008 में राष्ट्र ने उन्हें पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया।

केरल हिंदी प्रचार सभा के साथ उनका निकट संबंध है। भारतीय भाषाओं के प्रेमी विशेषकर मातृभाषा एवं राष्ट्र भाषा के लिए समर्पित स्व. डॉ.वेल्लायणि अर्जुनन को शत शत प्रणाम !

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

डॉ. वेल्लायणी अर्जुनन : एक लघु परिचय

अधिवक्ता मधु.बी

महान शिक्षा-विद और भाषाप्रेमी डॉ.वेल्लायणी अर्जुनन 31 मई 2023 को दिवंगत हुए। बहुभाषाविद के रूप में वे केरल में ही नहीं बल्कि पूरे भारत में ख्यातिप्राप्त हैं। उनका पूरा जीवन साहित्य की उपासना एवं साहित्य के शोधकार्य में व्यतीत हुआ है। विश्वकोश के तथा मलयालम महानिघंटु के निर्माण में उनका महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। अपनी स्कूली जीवन में ही हिंदी के प्रति उनके मन में गहरा अनुराग रहा। जब वे स्कूल के छात्र थे तब वे अपने जन्मदेश वेल्लायणी में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की कक्षायें चलाते थे। हिंदी का प्रेम बढ़ता ही गया और अंत में उन्होंने अपनी सतत साधना से अलीगढ़ विश्वविद्यालय से हिंदी में पीएच.डी की उपाधि हासिल की। तदनंतर उन्होंने दूसरे विश्वविद्यालयों से तीन डी.लिट की उपाधियाँ भी प्राप्त कीं। उनकी निगरानी में कई छात्रों ने शोध किया है जिनमें से कई लोग शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में विख्यात हुए।

अर्जुनन जी के कॉलेजीय जीवन में काव्य रचना प्रतियोगिता में अंग्रेज़ी, मलयालम, और हिंदी में उन्हें प्रथम स्थान मिला था। उन दिनों कॉलेज की अध्यापिका कोन्नियूर मीनाक्षी अम्मा ने मलयालम एम.ए. करने के लिए प्रेरित किया। बाद में उन्होंने अनेक भाषाओं में विद्वत्ता प्राप्त की। मलयालम, अंग्रेज़ी और हिंदी में स्नातकोत्तर उपाधि पाने के अलावा उन्होंने तमिल, तेलुगु और कन्नड में भी डिप्लोमा परीक्षायें पास कीं। इस बहुभाषा-ज्ञान से बाद में विश्वकोश के निर्माण में काफ़ी सहायक सिद्ध हुआ। जब स्व. सी.एच मुहम्मद कोया शिक्षा मंत्री थे, तभी डॉ.अर्जुनन के प्रागत्भ्य से प्रभावित होकर उन्हें विश्वकोश के सहायक मुख्य संपादक के रूप में नियुक्त किया था। उस समय डॉ.के.एम.जोर्ज विश्वकोश के मुख्य संपादक थे। तदनंतर जब वे विश्वकोश के मुख्य संपादक बने तब वे उसके कई भाग निकालने में सफल हुए। अपने व्यस्त जीवन में भी साहित्य की विविध विधाओं में तीस से अधिक श्रेष्ठ रचनाओं का प्रकाशन किया है। विविध संस्थाओं से उनको अनेकों पुरस्कार मिले हैं। उनमें से 2008 में प्राप्त भारत सरकार का पद्मश्री पुरस्कार उल्लेखनीय है। केरल हिंदी प्रचार सभा के साथ तथा सभा के पूर्व मंत्री स्व. एम.के.वेलायुधन नायर के साथ तथा केरल ज्योति के मुख्य संपादक प्रो.डी. तंकप्पन नायर के साथ उनका गहरा आत्मीय संबंध रहा। केरल हिंदी प्रचार सभा दिवंगत डॉ.वेल्लायणी अर्जुनन को भावभीनी श्रद्धांजली अर्पित करती है।

मंत्री, केरल हिंदी प्रचार सभा

यात्राविवरण

मानस कैलास

अनुवाद : डॉ.रंजीत रविशैलम

अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर

मूल : मंजु वेल्लायणि

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

साई मीरा, खन्ना और अतुल भार्गव षेरपाओं के एक संघ के साथ चल पड़े। मानो बारिश ने उनके आत्मविश्वास पर ठेस पहुँचाया हो। घोड़े के लिए बोल रखा था, उसे नकारने के कारण अतुल और खन्ना मीरा को कोस रहे हैं। हाथी के ऊपर चढ़ आने पर भी बारिश में भींगना ही थाने मीरा ने अपने प्रतिरोध में कहा। अच्छे रकम पाने की चाहत में षेरपा लोग एवं गाइड खुशी खुशी बारिश में भींग रहे हैं।

हिमपथों पर हिमवृष्टि बरसानेवाले मेघ हैं या क्रूर शक्तियाँ हैं? कितने ही लामाओं से मिलरेपा ने जादू-टोना सीखा था। परकाया प्रवेश से लेकर मृतकाया प्रवेश तक। उन्हें प्राप्त करने के लिए मिलरेपा ने जो तपस्या की थी वे गुफ़ायें कैलास पर्वतावलि में होंगी। सफेद लंबे लंबे घास की गुफ़ा, भूमध्य की छायाओं की गुफ़ा, लाल पत्थर-किला, पूर्णज्ञान गुफ़ा, आकाश वैजयंती गुफ़ा, वज्रगुफ़ा आदि।

कैलास यात्रा की योजना बनाने के पश्चात् ही हिमालय संबंधी अनेक पुस्तकें पढ़ी थीं। उससे लामा के बारे में पता चला। दाकिनियों को भी जाना।

तिबती भाषा में 'लामा' अर्थात् गुरा। 'ला' शब्द का अर्थ है परमज्ञान और 'भम' शब्द का अर्थ है मातृ वात्सल्य। दोनों के संगम से 'लामा' बन जाता है।

गुरु नित्यानंदयति की भूमिका के साथ विनय चैतन्या द्वारा अनूदित 'मिलरेपा' पढने पर ऐसा लगता है कि वह असंभव बातों की गिरिश्रृंखलाएँ हैं। पर मानसरोवर से लेकर जो सफर थी उनसे एक बात व्यक्त हुई। अनेक परम सत्य अतिशयोक्ति के हिम के भीतर ढके पड़े हैं। एकांत ध्यान की गर्मी लगने पर वह गलकर बहने लगता है। वटक्कुमनाथ दर्शन के बाद स्वामी अरूपानंदा ने जो भाषण दिया था वह मिलरेपा के बारे में था वह केवल आकस्मिक नहीं। हिमवर्षा पुनः मिलरेपा की राहों पर मन को ले गई।

मिलरेपा के आत्मभाषण में बाइबिल के दर्शन की गर्मी एवं ठंठक है। लंबे घास की गुफ़ा में ध्यान। एक थैले के साथ एक बरस। कंडली (खुजली-पौधा) पकाकर भूख मिटाए वे ध्यानदिन। भूरे बारों से युक्त शरीर अस्थिपंजर। त्वचा पर कंडली का रंग।

जन्म से नग्न मैं क्यों शर्माऊँ? आनंद सूर्य के प्रज्वलित खडे होने पर चिराग क्यों चाहिए?

भीतर तन के हामा बनाकर
भूल गया मैं बाह्य विचार।

कविता

मतदाता

डॉ.नवीना.जे.नरित्तूक्किल

हमेशा की तरह
आज भी
वह खड़ी है कतार में
सबसे आगे।
सुबह सात बजे
जब अफसर लोगों ने
चुनाव की सारी तैयारियाँ कीं
तब वह दरवाज़े के बाहर
प्रथम स्थान पर आकर
खड़ी हुई।
बयासी उम्र की बूढ़ी
जो इसी गाँव की है
और अकेली भी,
फिर भी खुद चल सकती है
अपने हक से प्रबुद्ध
यही सोचकर कि इस बार भी मैं
करूँगी अपना मतदान सबसे पहले।
उसके होंठ काँप रहे हैं
मानो वह कुछ रट रही है,
उसका नाम जिसे वह देना चाहती है अपना मत।
कई चुनाव आये
लोग भी जीत गए
बूढ़ी को यह भी नहीं मालूम है कि
पिछली बार कौन जीत गया है
और कौन हारा है?
वह बस इतना ही जानती है कि-
अकेली हूँ मैं
और गरीब भी।

असिस्टेंट प्रोफसर
हिंदी विभाग
बिषप चूलोपरंबिल मेमोरियल कॉलेज
कोट्टयम

पंचभूत जिस तरह आसमान का आलिंगन करते हैं उसी तरह मैं आसमान को गले लगाऊँ। हृदय को धन्य जो बनाता है वह है ध्यान। शरीर है देवालय। मन पर सफर करने वाला मन न धकने वाला घोड़ा है। इस तरह प्रसिद्ध मिलरेपा के हज़ारों जाने आज भी तिबत की हवा एवं हिम का मंत्रणा करते रहती हैं।

कोई भी संन्यासी एक सुप्रभात में अचानक उगता सूरज नहीं। जाने या अनजाने में उनके द्वारा किए गए पाप, अपराध, एक औसत मन की बुराइयाँ, लालसा, स्वार्थता आदि गिलगिली भूमि, वेदना एवं आत्मपीड़न के मरुस्थल, उम्र को लूटते भीषण बीमारियाँ आदि पार करके ही एक व्यक्ति योगी बन जाता है। जो बिताया, अनुभूत जीवन क्षणों से साम्यता रखने व जीवन झेले लोगों को हम पसंद करते हैं। वे शायद, पुराणेतिहास के पात्र हो सकते हैं। शताब्दियों पहले के भी हो सकते हैं। लोककथा नायक भी हो सकते हैं। महायोगी भी हो सकते हैं।

मानवरूप धारी किसी व्यक्ति की जीवन यात्रा में कर्ण को देख सकते हैं। राम और रावण को देख सकते हैं। मिलरेपा को देख सकते हैं। आनेवाले समय एवं शताब्दियों के लिए वे कभी भी नवागत नहीं है। जीवन के किसी मोड़ में वे बाद में आनेवालों की प्रतीक्षा में खड़े हैं। (क्रमशः)

मृत्यु के इस पार और उस पार
(कुंवर नारायण एवं पी.रविकुमार का तुलनात्मक चिंतन)

डॉ. मधु वासुदेवन

भारतीय साहित्य संपदा के अंतर्गत पौराणिक एवं ऐतहासिक मिथकों पर आधारित अनेक भावसंकुल तथा विचारोत्तेजक रचनाएँ उपलब्ध हैं । व्यापक रचनात्मक उपक्रमों की निर्मिति ही उन कृतियों का चरम लक्ष्य है। वे आधुनिक जीवन की जटिलतम परिस्थितियों को संवारते हुए प्रगाढ दार्शनिक सन्दर्भों को लगातार उभारते हैं। इस परंपरा में कठोपनिषद के नचिकेता प्रसंग को केन्द्र बनाकर भारत देश में बहुत सी साहित्यिक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। उनमें हिन्दी के वरिष्ठ कवि कुँवर नारायण का 'आत्मजयी' और मलयालम के प्रतिष्ठित कवि एवं संगीत-समीक्षक पी. रविकुमार का 'नचिकेतस' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इन दोनों के रचनाकाल के बीच लंबा अन्तराल तो है फिर भी इनका तुलनात्मक अध्ययन नचिकेता के दार्शनिक स्वरूप को अधिक संप्रेषणीय बना देता है, साथ ही पाठक को विभिन्न दृष्टिकोणों से नचिकेतस को समझने का अपूर्व अवसर भी प्राप्त होता है।

ज्ञानपीठ विजेता कुँवर नारायण ने एक सच्चे कलोपासक एवं सांस्कृतिकचेता कवि के रूप में काफी यश हासिल किया है। वे आत्मादेश के सृजनधर्मी हैं जो हमारे समय के सबसे प्रतिष्ठित विचारकर्ता भी हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य में कुँवर का सारस्वत व्यक्तित्व उन महान साहित्यकारों के समशीर्ष है जिन्होंने अपनी कला एवं साहित्य की सांस्कृतिक उपासना को मानवजाति के लिए बिलकुल उपयोगी बनाया। प्रखर आधुनिकबोध से अनुशासित उनका नैसर्गिक काव्यबोध अतीत और भविष्य के प्रति सचेतनता दिखाता है । पिछले पाँच दशकों से उदात्त मानवीय मूल्यों को पोषित करनेवाली उनकी काव्यदृष्टि समकालीन हिन्दी कविता के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को समृद्ध कर देती है।

उत्तुंग आत्मबोध के कवि कुँवर नारायण मानवीय मूल्यों की अन्वेषणा के लिए उत्सुक साहित्यकर्मी हैं। उनकी कविताओं में आधुनिक भावबोध के साथ बृहत्तर वैज्ञानिक बोध भी मौजूद है। वह उनके रचना तन्त्र में तर्क,बुद्धि एवं भावुकता की आभ्यंतर प्रवृत्तियों को संकलित करता है। कुँवर नारायण की आत्मजयी दार्शनिक विचारों से मंडित प्रबन्ध काव्य है जो कठोपनिषद के नचिकेता को उपजीव्य बनाकर लिखा गया है। प्रस्तुत कृति नचिकेता के मृत्यु चिन्तन के माध्यम से मानव जीवन के लाज़मी एवं निहितार्थ को परखने की एहतमाम करती है। 'आत्मजयी' आधुनिक जीवन समस्याओं में हस्तक्षेप करते हुए उनका समाधान ढूंढ निकालने का महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रयास है। वह सामाजिक धरातल पर उपस्थित अयाचित अवस्था से मुक्त होकर नई रचनात्मक ऊर्जा का एलान करती है। उसमें जिन मसलों के जवाब तलाशे गए हैं वे आधुनिक मानव के बौखलाहट भरे जीवन से सीधे जुडे हुए प्रश्न ही है।

कहना न होगा कि आत्मजयी अपने विचारात्मक स्तर पर भारतीय दर्शन एवं अध्यात्म से गहरा संबन्ध रखता है। पौराणिकता तथा आधुनिकता का सन्तुलित समीकरण आत्मजयी की मुख्य पहचान है। कुँवर नारायण नयी विचारधाराओं से लाभान्वित होकर भी इस भौतिक जीवन को पुराने सन्दर्भों को जोड़ देना चाहते थे। वे कहते हैं "आत्मजयी के लिए उपनिषदों की ओर जाने के पीछे भी मेरे मन में यह इच्छा प्रमुख थी कि कविता में अपेक्षाकृत कम इस्तेमाल किए गए किसी मिथक को लूँ। दूसरे, नचिकेता का जीवन और मृत्यु संबन्धी अनुभव उतना ही आधुनिक भी है जितना वह प्राचीन है, और उसके अनुभवों में जीवन के प्रति गहरी आस्था का भाव है। कठोपनिषद्-दर्शन से अधिक नचिकेता की मानवीय नियति ने मुझे आकृष्ट किया जिसे मैंने आत्मजयी में प्रमुखता दी है। निजी

तौर पर, आत्मजयी लिखना मेरे लिए एक तरह से उस मृत्यु भय से उबरने की चेष्टा भी थी जो परिवार में कुछ दुखद मौतों के कारण मन में बस गया था।"[1]

'आत्मजयी' मूलतः आधुनिक चेतना से गुंफित मिथकीय काव्यरचना है। भारतीय दर्शन के अनुसार मृत्यु जीवन की वह चरम स्थिति है जो इस नितान्त विक्षिप्त सांसारिकता से मुक्ति या शांति प्रदान करती है, जबकि पाश्चात्य अस्तित्ववादी दर्शन के विश्लेषणार्थ मृत्यु जीवन की ओर उन्मुख करनेवाला शाश्वत तत्त्व है। स्वातंत्र्यबोध के सत्तात्मक धरातल पर मनुष्य अपने आपको परिपूर्णतः सार्थक बनाने की कोशिश में लगे रहते है, नतीजतन उसके अस्तित्व को सर्वस्वीकृत कराने की प्रवृत्ति भी ज़ारी रहती है। स्वत्व के प्रति बढती सावधानी और व्यक्तित्व की पूर्णता का आग्रह व्यक्ति को जीवन के वास्तविक मूल्यों की ओर दिशा निर्दिष्ट करती है। समीक्षकों के दृष्टिकोण में आत्मजयी का मूल उद्देश्य अस्तित्ववादी चिन्तन पद्धति को परिभाषित करना है। नचिकेता के मुँह से अपने अस्तित्व की अनुभूति को प्रेषित करने के पीछे कुँवर नारायण का यही बोध कार्यशील है। नन्दकिशोर नवल ने लिखा "आत्मजयी असंदिग्ध रूप से अस्तित्व वाद से प्रेरित ही नहीं, अतिशय प्रभावित रचना भी है।"[2] किन्तु यह तत्थ्य कम विचारणीय नहीं है कि कुँवर में पाश्चात्य दार्शनिक योजनाओं की तुलना में भारतीय तत्व चिन्तन का असर अधिक पडा है। प्रकारांतर से 'आत्मजयी' का ठोस भारतीय वाचन भी साध्य है।

दरअसल भारतीय अस्तित्व चिन्तन पाश्चात्य अस्तित्ववाद से बिल्कुल अलग है। पाश्चात्य अस्तित्ववाद आस्तित्व संकट की उपज है। उसमें जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टि आरोपित करने के बावजूद वह निराशा के कठमुलों से सहजतः बच जाता है। सार्त्र जैसे विचारकों ने अस्तित्ववाद को युगीन मानवतावाद घोषित किया था तथा अस्तित्ववाद में व्यक्ति की स्वतन्त्रता को उच्च स्थान देते हुए उसका संबन्ध व्यक्ति के जवाबदेही चरित्र से जोड दिया। इस दृष्टि से, जिस अर्थ में सार्त्र ने अस्त्वित्ववाद को विश्लेषित किया था उस अर्थ में 'आत्मजयी' अस्तित्ववादी रचना है। लेकिन 'आत्मजयी' की मूलकथा भारतीय वेद-पुराण से ली गयी है तथा उसके पीछे वर्तित दर्शन का भी प्रत्यक्ष भारतीय परिवेश होता है। भारतीय दर्शनानुसार अस्तित्व चिन्तन जीवन के प्रति सकारत्मक दृष्टिकोण रखता है। वह जीवन की क्षणिकता को भी सकारात्मक ढंग से अनुभव करने का तरीका है जो मनुष्य के स्वत्वसंकट की तलाश करते हुए उन्हें जीवनोन्मुखी बना देता है। अतः आत्मजयी में भारतीय अस्तित्व चिन्तन अधिक है पाश्चात्य अस्तित्ववाद अपेक्षाकृत कम है। इसमें कम से कम अस्तित्ववाद की नकारात्मक पहलुओं की उपेक्षा हुई है। लेकिन आत्मजयी में प्रयुक्त भारतीय मिथक में अप्रत्याशित पाश्चात्य अस्तित्ववाद का आरोप अतिरंजित धारणा है। श्रीकान्त वर्मा ने कहा कि मूल्यों के युग का चरित्र मूल्यहीनता के युग का प्रतीक नहीं बन सकता। 'आत्मजयी' में उस भारतीय दर्शन की प्रेरणा ज्यादा है जिसके अनुसार आत्मा अनश्वर है, वह कभी नश्वर नहीं हो सकती।

आधुनिक बोध के परिप्रेक्ष्य में 'आत्मजयी' की प्रासंगिकता बनी रहती है। सचमुच यह कृति समकालीन जीवन से जूझनेवाली सहस्रदली चिन्ताओं का रचनात्मक आयाम है। आधुनिक समय की बिदकती जीवन स्थितियों में नचिकेता उस आधुनिक मानव का प्रतीक मात्र है जिसमें पौराणिक स्वत्वबोध को निर्धारित करना अनुचित है। आत्मजयी पाठकीय स्तर पर इस अवधारणा को प्रक्षेपित करता है कि सुविधाभोगी मनुष्य का चरम लक्ष्य सुख पाना ही है, बल्कि मानव को अपने जीवन की भौतिक आकांक्षाओं को दमित करके एक सार्थक व सम्यक् जीवन जीना चाहिए। कुँवर नारायण का नचिकेता अपनी आत्मा को इस तरह जीत लेता है कि वह निराशा एवं कुंठा की अवसाद स्थिति का अर्थात् मृत्यु का स्वयं अनुभव करके जीवन की ओर लौट आता है जिससे वह अपने अस्तित्व के अमरत्व की अपरिमेय अवस्था को आत्मसात करता है। आत्मजयी की भूमिका में कुँवर नारायण ने लिखा "मृत्यु के चिंतन से जीवन के प्रति निराशा ही पैदा हो यह आवश्यक नहीं उससे कोई नितांत मौलिक दृष्टिकोण भी जन्म पा सकता है। इसका उद्देश्य इतना है कि अस्तित्ववाद कोरा निराशा

का दर्शन नहीं है। काव्यनायक की चिंता अमर जीवन की चिंता है। अमर जीवन का तत्पर्य उस अमर जीवन मूल्यों से है, जो व्यक्ति का अतिक्रमण करके सार्वलौकिक और सार्वजनीन बन जाते है।"[3] इस प्रकार कुँवर नारायण ने नचिकेता के बौद्धिक बिंब के माध्यम से मृत्यु तथा अमरत्व के संबन्ध में कुछ महत्वपूर्ण दार्शनिक चिन्तन अनावृत किया है जिसके मूल में वैयक्तिक्र मूल्यों का उल्लंखन करनेवाले सार्वकालिक व सार्वजनीन मूल्यक्षेत्रों का अनेकायामी अर्थान्तर निहित रहता है।

पी.रविकुमार केरल के वरिष्ठ पत्रकार, सांस्कृतिक चिन्तक एवं प्रतिष्ठित संगीत-समीक्षक हैं। 'नचिकेतस' रविकुमार का दार्शनिक गौरव से मंडित रहस्यवादी काव्य है जो उनके साहित्यिक जीवन की चरम उपलब्धि है।मूल रूप से 'नचिकेतस' असुलभ आध्यात्मिक अनुभूति का शांत संप्रेषण करनेवाला, महाकाव्योचित गरिमा से युक्तलघु काव्य है। महाकवि अक्कित्तम के अनुसार ' पी रविकुमार कृत नचिकेता नामक यह दीर्घ कविता कठोपनिषद में ही एक पाँव पर खडे हो तप करती है। उसमें वेद, वेदान्त एवं गीता के वैज्ञानिक अध्ययन से संपुष्ट औपनिषदिक विचारधारा का परम विस्फोट सुनाई देता है।"[4] जहाँ रविकुमार की मुक्तिजिज्ञासा अनेक वैचारिक पथों से होकर गुज़री हुई है, उसकी उत्कृष्ट अवस्था में उसकी चेतना, भौतिक जगत के घृणात्मक संकोच से आत्मतत्व के विश्वंभरी विकास में परिवर्तित हुई। वस्तुतः'नचिकेतस' इस अपूर्व मनोदशा की काव्य परिणति है।

भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य में संस्थित 'नचिकेतस' अपने उद्देश्यपरक फलक पर मानवीय जीवन की युगीन स्थिति की लेखा जोखा करता है। यद्यपि रविकुमार का 'नचिकेतस' प्राचीन भारतीय वाड्मयों से रचनात्मक प्रेरणा आर्जित की है तथापि उसके स्वरूप एवं संरचना में आधुनिकबोध का सूक्ष्म सन्निवेश लक्षित होता है। 'नचिकेतस' मानव जीवन से सीधे जुडनेवाली कृति है जो अपने गर्भ में जीवन के स्वस्थ व अमर मूल्यों को सुरक्षित करती है।

रविकुमार 'नचिकेता' में नारकीय अनुभवों की एक लंबी सूची देते हैं। जब हम इनमें से प्रत्येक अनुभव को पढ़ते हैं, तो हमारे दिल आश्चर्य और चिंता की प्रतिध्वनियों से भरे होते हैं।"[5] यह काव्य इस अस्वस्थ समाज में अनुत्तरित प्रश्नों के गूढजाल में फँसे मानव मात्र के संकट और जटिलता का प्रतिपादन करता है। कलुषित जगत की मोहमाया में रचे-बसे अस्तित्वविहीन मनुष्य का उद्धार करते हुए उसका सही पथनिर्देश प्रस्तुत करना ही रविकुमार का विनम्र आग्रह है। अतएव नचिकेता की सृष्टि अचानक नहीं हुई है। इसके पीछे गंभीर चिन्तन-मनन और सोच-विचार की सुदीर्घ प्रक्रिया अवश्य है। रविकुमार ने भौतिक जीवन से संजोये अनुभवों तथा उनके खरेपन से इस काव्य का कलेवर सजाया है। वे मानते हैं कि इस भौतिकवादी संसार में रहकर हम जीवनपर्यन्त विपुल ज्ञानार्जन करते हैं। इस तुच्छ जीवन का लक्ष्य यह भी होता है कि अर्जित ज्ञान का यथासाध्य दूसरों को दे देना। महिमामंडित जीवन के अनिषेध्य तत्वों का सारांश इस तरह खुल जाता है। आखिरकार प्रत्येक सिद्धान्त या दर्शन का परम उद्देश्य जीवन के सार्थक पक्ष को विवृत करना है जिससे मानव अभ्युन्नति हासिल कर सकता है।

'नचिकेतस' मानव की तर्कबुद्धि एवं विवेकशीलता का प्रतीक है जो विपरीत एवं प्रतिकूल परिस्थितियों से उलझने के बावजूद कभी पराजित नहीं होता।यह काव्य एक ओर जहाँ अध्यात्म की चरम परिणति को प्रदर्शित करता है वहीं दूसरी ओर लौकिक भाव-भंगिमाओं का भी सुघड़ता पूर्वक प्रदर्शन करता है।"[6] इस काव्य के द्वारा माया, मोह, अहं, अन्याय, भोगपरता आदि का पालन करनेवाली विधेयवादी नीरस आत्मा को रविकुमार मुक्तिदेते हैं। देहलीला की केलिमुद्रा में लीन होकर त्वचा की कोमलता में व्यतीत होनेवाले नये मनुष्य की बिंब रचना में रविकुमार समर्थ हुए हैं। पुराण के पुनराख्यान के द्वारा जीवजगत के कर्मकाण्ड का विस्तृत अवलोकन 'नचिकेतस' के गंभीर वाचन के लिए विवश करता है। नचिकेता के यक्ष प्रश्नों का जो उत्तर यम ने दिया है वह भारतीय दर्शन की कर्मप्रधान संस्कृति और कर्मयोग की यथार्थ अनुभूति कराता है।"[7] जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त एकाएक प्राणी का निश्चित कर्मक्षेत्र होता है। कर्मफल की भोगावस्था को

तोडने में प्रत्येक जीवि असमर्थ भी है। यह एक सामान्य प्राकृतिक सत्य है कि फलप्राप्ति कर्मसापेक्ष होता है। 'नचिकेतस' में भयावह नरकवर्णन के माध्यम से कवि ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि मानव को इस संश्लिष्ट जीवन स्थिति में आकर जिस तरह मानवीय मूल्यों को सुरक्षित रखना चाहिए। उन्हें आत्मशोध के द्वारा जीवन के प्रतिक्षण को सार्थक बनाना अपेक्षित है। यहाँ कवि का दायित्वबोध एक स्वस्थ सामाजिक जीवन की आशा करता है। इसके सहारे कवि स्वयं प्रकाशित नीति की प्रासंगिकता को संप्रेषित करते हैं। प्रकारांतर से 'नचिकेता' नव उपनिवेशवाद एवं भूमण्डलीकरण की युगसंधि में सामन्ती व अर्द्धसामन्ती सभ्यता के सामने उचित प्रतिगामी विमर्श प्रस्तुत करके कृपावाद के ऊपर निरपेक्ष कर्म के समवाय को प्रतिष्ठित करता है। इसमें पाठक के आत्मवृत्त को खोल देने की गहरी आकाँक्षा शामिल है।

'नचिकेतस' में रविकुमार ने आत्मान्वेषण की मौलिक प्रवृत्ति के माध्यम से अमूर्त विचार पक्ष को मूर्तता दी है। आध्यात्मिक अनुभवों की ऊहात्मकता को भेदकर बौद्धिक जगत के मार्मिक सत्य को 'नचिकेता' उद्‌घाटित करता है। 'नचिकेतस' के बारे में प्रो.सुरेन्द्र वर्मा लिखते हैं- नचिकेतस काव्य मनुष्य को भौतिक से उठाकर नैतिक, और नैतिक से उठाकर अपने आध्यात्मिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने के लिए एक आमंत्रण है। नचिकेतस में अभिव्यंजित जीवन-दर्शन हमें उस आध्यात्मिक उँचाई पर ले जाता है जहाँ हम अपने प्रतिदिन के जीवन को पापरहित, और अधिक सुन्दर बना सकते हैं।"[5] इस कृति ने, जनम और मरण के अन्तसंबन्ध की सांसारिक व्याख्या देते हुए आधुनिक काव्य के जटिल मृत्युबोध से भिन्न होकर सत्य के साक्ष्य के रूप में मृत्युबिंब को प्रस्तुत किया है। 'नचिकेतस' का काव्य बिंब कभी मृत्यु से भयभीत नहीं होता, अपितु वह मृत्यु का आस्वादन करता है। नचिकेतस मृत्यु के सम्मुख कदाचित् चकित नहीं होते, बल्कि अद्‌भुत सहित आदर के साथ मृत्यु का सामना करते हैं । वे मृत्यु को जिजीविषा में अनूदित करते हैं। नरक वर्णन के विस्तृत परिवेश में वे कठिन नैतिक समस्याओं को विलंबित काल में उठाते हैं और उसके लिए उचित समाधान ढूँढते हैं। वह रजतमगुणी मनुष्य के भविष्य को बेहतर बनाने का दृढआग्रही है। काव्यांत में यमदेव संतुष्ट होकर नचिकेता की माथा को चूम लेता है जिससे दर्शन की कठोरता, स्नेह के लालित्य में परिवर्तित हो जाता है। रविकुमार की मौलिक उद्‌भावना इस सत्य को घोषित करती है कि प्रेम जो जीवन का शश्वत सत्य है उसको केवल वाचिक दर्शन में संकुचित होना असंभव्य है। यह काव्य परंपरानुमोदित एवं अतिशास्त्रीय आंतरिक यात्रा से अपेक्षाकृत मुक्तहै। यद्यपि 'नचिकेतस' की स्रोतसामग्री वैदिक साहित्य होती है फिर भी सुभाषित संग्रह की कुत्सित कृत्रिमता में वह कभी खो नहीं जाता।

भारतीय वेद-पुराणों में कठोपनिषद का शिखर स्थान होता है। क्योंकि अन्य उपनिषदों की तुलना में कठोपनिषद का प्रतिपादन इतना सरल है कि इसमें कथा के माध्यम से दार्शनिक विवेक दिया जाता है। विवेकानन्द और महाराजा स्वाति तिरुनाल जैसे मनीषियों के चिन्तन की मूल प्रेरणा के रूप में संस्थित इस उपनिषद का केन्द्र पात्र नचिकेतस है जो अपनी बाल्यावस्था में जीवन संबन्धी निगूढ रहस्यों को जानने में उत्सुक हो उठते हैं। इस उपनिषद पर आधारित 'आत्मजयी' और 'नचिकेतस' सही अर्थ में दार्शनिक काव्य संस्कृति की अमूल्य निधियाँ हैं। वस्तुतः सत्य एकरूपी है हालाँकि उसे समझने तथा समझाने का तरीका अलग अलग है। यद्यपि इन दोनों कृतियों की आधार श्रुति संगीत है तथापि विभिन्न परिवेशगत भाषागत तथा प्रवृत्तिगत आयामों के फलस्वरूप इनके अलग वाचन स्तर होते हैं। जहाँ 'आत्मजयी' परोक्ष रूप से पाश्चात्य दर्शन से प्रेरित है वहाँ 'नचिकेतस' भारतीय दर्शन को अपने रचनात्मक धरातल पर दर्ज करता है। 'आत्मजयी' का रचनाकाल1965 के आसपास था, इसलिए उसमें उद्‌भाषित समस्याओं व परिस्थितियों का तद्युगीनसंबन्ध अवश्य होता है। 2012 में प्रकाशित 'नचिकेतस' समकालीन समाज की नक्शा प्रस्तुत करनेवाली कृति है जिसमें भूमण्डलीकरण सहित नव उपनवेशवादी जीवन स्थितियाँ दिखाई देती हैं। 'आत्मजयी' में नई कविता की प्रवृत्तिगत विशेषताएँ प्रतिबिंबित होती हैं। किन्तु समकालीन काव्यगत प्रवृत्तियों से 'नचिकेतस'

अपेक्षाकृत मुक्तरहता है। 'आत्मजयी' जीवन संबन्धी लौकिक परिचय प्रदान करता है जिसमें कुँवर नारायण की अन्तश्चेतनात्मक आत्माभिव्यक्तिसन्निहित है। लेकिन आत्मेतर अभिव्यक्ति की सुलगती आग में प्रांजलित'नचिकेतस' अलौकिक आत्मसाक्षात्कार के सहज वृत्त में आ जाता है। अंततोगत्वा 'आत्मजयी' एक लौकिक काव्य है जिसके पीछे विशिष्ट काव्य दृष्टि प्रवर्तित है जबकि 'नचिकेतस' एक अलौकिक काव्य है जो चिन्तन दृष्टि के अवलंब में सृजित हुआ है। 'आत्मजयी' की भाषा काव्योचित है वहाँ 'नचिकेतस' की भाषा दार्शनिकता का गौरव धारण करती है। दोनों कृतियों के विहंगावलोकन के बहाने यह विदित होता है कि काव्य परंपरा को स्वीकारनेवाली' आत्मजयी' और काव्य परंपरा के प्रति अनाकृष्ट 'नचिकेतस' दोनों विशिष्ट काव्य अस्तित्व रखनेवाली उदात्त कृतियाँ हैं। इनका संबोधन एक ही व्यक्तिके प्रति होता है जो आधुनिक जीवन के बहुविध संघर्षों से उत्पीडित है और उनसे मुक्ति पाने की अदम्य इच्छा हेतु विशिष्ट आध्यात्मिक रहस्य की तलाश में है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुँवर नारायण, वक्तव्य, कुँवर नारायण रचना संसार (सं) यतीन्द्र मिश्र, पृ.370
2. नन्दकिशोर नवल, कुँवर नारायण की कविता, अन्तर्दृष्टि 3/36
3. कुँवर नारायण, भूमिका, आत्मजयी
4. महाकवि अक्कित्तम, नचिकेता पृ.24
5. प्रोफेसर. जी.बालकृष्णन नायर, ए मिस्टिकपोयम, नाचिकेतस, पृ.21
6. मोहन द्विवेदी, भारतीय वाङ्मय की अजस्त्र निधि, नचिकेता पृ.24
7. मोहनलाल बाबुलकर,केरलज्योति, मई 2013, पृ.39
8. प्रो.सुरेन्द्र वर्मा, केरल ज्योति, मार्च 2013, पृ.41-42

एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग,महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम
Email : madhuvasudevan111@gmail.com
Mobile – 98469 37252

श्री नारायण गुरु की आध्यात्मिक क्रांति

श्रीनारायण गुरु ने सभी धर्मों की मूलभूत एकता पर बल दिया और उन्होंने धर्मों से परे जो आध्यात्मिकता है, उसीको उजागर किया। उनके समय में अमानवीकरण के कारण अस्पृश्य जाति के लोगों का धर्म परिवर्तन बहुत हो रहा था। उन्होंने इसी संदर्भ में बताया कि 'धर्म चाहे जो भी हो, लेकिन मनुष्य अच्छा बने।' उनके अनुसार धर्म बदलें, यह आवश्यक नहीं है, लेकिन धर्म की स्वतंत्रता सब को होनी चाहिए। उनके कार्यकलापों के कारण धर्म परिवर्तन काफी हद तक रुक गया और पददलित समूह की उन्नति पर लोगों का ध्यान गया जिससे केरलीय समाज में धर्मों के प्रति उदार दृष्टिकोण विकसित हुआ। 'एक जाति, एक धर्म, एक ईश्वर मनुष्य के लिए' यह तो सनातन हिंदू धर्म के उदार एवं सार्वभौम रूप की एक पुनर्व्याख्या है। आम लोगों की उपासना के लिए उन्होंने शिव, सरस्वती तथा अन्य वैदिक देवताओं के मंदिर बनाए और कुछ मंदिरों में 'ऊँ' आदि की प्रतिष्ठा की। लेकिन अपनी 'ब्रह्मविद्या पंचक', 'दैव दशक', 'अद्वैत दीपिका', 'आत्मोपदेश शतकं', 'दर्शनमाला' जैसी कविताओं में अद्वैत दर्शन और शैव दर्शन की पुनर्व्याख्या के साथ ही अपनी गहन आध्यात्मिक अनुभूतियों को भी अभिव्यक्त किया है। इन कविताओं में उन्होंने एक ही परब्रह्मा या ईश्वर के बारे में बताया, जिसके बारे में उपनिषद् और विश्व के प्रमुख धर्मों में प्रतिपादित किया गया है।

डॉ.जी. गोपीनाथन द्वारा रचित 'श्रीनारायण गुरु : आध्यात्मिक क्रांति के अग्रदूत' शीर्षक ग्रंथ से उद्धृत। पुस्तक का प्रकाशक है ज्ञान गंगा, नई दिल्ली - 110 002

‘आंगन की चिड़िया’ में नई पीढ़ी की मानसिकता में आए बदलाव

डॉ. आषा.जी

आधुनिक काल में विभिन्न परिस्थितियों के कारण जीवन मूल्य में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। अधिकतर नई पीढ़ी में ही इस परिवर्तन का असर पड़ता है। पुरानी पीढ़ी इन बदलावों के साथ आसानी से सामंजस्य नहीं कर पाता। अतः दो पीढ़ियों के बीच मतभेद एवं संघर्ष उत्पन्न होता है। इसी स्थिति का चित्रण 2000 के बाद की महिला कहानीकारों ने बखूबी किया है। वर्तमान शिक्षित नई पीढ़ी आधुनिकता का मुखौटा पहनकर बदलते जीवन मूल्यों को अपनाने की कोशिश करती है। सभ्यता, संस्कृति, रीति-रिवाज आदि भारतीय परंपरा में पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे हैं। शिक्षा प्राप्त कर आज हर कोई स्वतंत्र रहने, पैसा कमाने और मनमाने ढंग से जीना चाह रहे हैं। चित्रा मुद्गल की‘ आंगन की चिड़िया‘ कहानी में परंपरा और आधुनिकता के बीच उत्पन्न संघर्ष का चित्रण करते हुए नई पीढ़ी की मानसिकता में आए बदलाव को वे उजागर करती हैं। महानगरीय जीवन में अपनी जिंदगी का चयन करने वाली दिव्या के माध्यम से पारंपरिक पारिवारिक जीवन में आए तनाव को प्रस्तुत किया है। दिव्या आधुनिक विचारों वाली नारी है। वह अलग से किराए के फ्लैट में अपने दोस्त के साथ लिव-इन में रहती है और अपने माँ- बाप को यह बताना भी जरूरी नहीं समझती। माँ-बाप तो उसके लिए लड़के देखते हैं, शादी के सपने सजाते हैं। लड़की तो मल्टीनेशनल कंपनियों की बड़ी-बड़ी पैकेज के पीछे भागती फिरती है और बीच-बीच में प्रशिक्षण के लिए विदेशों में उड़ती है। जिनेवा से प्रशिक्षण लेकर लौटी दीवू हांगकांग़,ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका की यात्रा पर निकल गई। मल्टीनेशनल की ऊंची उड़ान भरने के लिए खुला आसमान देती है। दिव्या के साथ दिल्ली पहुंची मां से उसका कथन, उसकी अपनी मर्जी तथा वर्तमान दौर के सहजीवन पर उसके अमित इच्छा को प्रकट करती है,‘मैं तुम्हें और पापा को बताने की अब तक हिम्मत नहीं संजो पाई। कई बार कोशिश की मगर... सच तो यह है इतने बड़े शहर में अकेले रहना मुश्किल है किसी भी लड़की के लिए। हमने और विक्की ने बिना फेरों के साथ रहने का निश्चय किया है.... हम इस इंतजार में थे..... अब तुम आ गई हो तो हमारे संबंधों पर स्वीकृति की मुहर लग जाएगी।[1] इस कथन से स्पष्ट है कि मूल्य परिवर्तन और नारी पुरुष संबंध पर आए आधुनिक दृष्टिकोण ने परंपरागत मूल्य संपन्न नारी के व्यक्तित्व को तोड़ दिया है। आधुनिक पीढ़ी जो है वह किसी पुरुष या स्त्री के साथ बिना शादी करके प्रेम संबंध और यौन संबंध रखना चाहते हैं। विवाह के पूर्व स्त्री पुरुष को एक साथ रहना समाज को मान्य नहीं था। लेकिन वर्तमान समय में लिव-इन रिलेशनशिप बदलते जीवन मूल्य के रूप में मान्य होने लगी है।

प्रस्तुत कहानी में दिव्या परंपरागत मूल्यों व संस्कारों के विपरीत खड़ी नजर आती है। विवाहित जीवन में परंपरागत मूल्यों का कोई सम्मान नहीं देता। परंपरागत मूल्यों को पूरी तरह तिरस्कृत कर अपनी मनपसंद साथी के साथ जीने के लिए तैयार हो जाती है। इस प्रकार की प्रवृत्ति नई पीढ़ी में देख सकते हैं। महानगरों में सहजीवन एक सामान्य जीवन शैली हो

चला है लेकिन छोटे शहरों में रहते दिव्या के मां बाप के लिए यह संबंध अनैतिक है। पारिवारिक जीवन मूल्यों में बिखराव होने के अनेक कारणों में से यह एक महत्वपूर्ण समस्या है। पुरानी पीढ़ी तो मूल्यों की रक्षा करने के लिए और मूल्य संबंध नई पीढ़ी के निर्माण के लिए हर कीमत को त्यागने के लिए तैयार है। इस कहानी में दिव्या का व्यक्तित्व आज की नारी की मानसिकता में आए बदलाव को अंकित करता है। इसमें आधुनिक युवा पीढ़ी ने विशेषकर नारी और उनके बदलते जीवन मूल्यों का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। विदेशी संस्कृति की चकाचौंध से प्रभावित होकर युवा पीढ़ी विवाह संबंधी परंपरागत मान्यताएं और उनसे संबंधित महत्वपूर्ण मूल्यों को उपेक्षित भाव से देखते हैं। प्रेम करके बिना शादी से दांपत्य संबंध बताने वाली दिव्या में पवित्र वैवाहिक मूल्यों का पतन देख सकते हैं। आधुनिकता वादी दृष्टिकोण में काम संबंधों के प्रति मान्य मूल्यों को भी परिवर्तित कर दिया है। "समसामयिक परिप्रेक्ष्य में संस्कृति और मूल्यों के बीच द्वंद्वात्मक संघर्ष चर रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों में तेजी से गिरावट आई है। पाश्चात्य संस्कृति से काम वृत्ति और अर्थ संग्रह प्रवृत्ति भारत में आयात कर ली गई है।"[2] आज की युवा पीढ़ी के बदलते मानवीय मूल्यों का चित्रण इसमें किया है जो ज्यादा स्मार्ट बन गया है। माता पिता के दांपत्य संबंध के बीच अगर कोई पारस्परिक तनाव होता तो आधुनिक पीढ़ी उसके विरुद्ध आवाज उठाती है और अपनी मनमानी से फैसला भी लेती है। वर्तमान समाज में नारी को आर्थिक स्वतंत्रता मिली तो वह आत्मनिर्भर हुई है। यहाँ विघटित परिवार के सामने वह हार नहीं गई। अपने मन की शक्ति लेकर जीने के लिए तैयार होती है । नई पीढ़ी के मन में श्रद्धा और इनके द्वारा स्थापित पुरानी मान्यताएँ निरर्थक हो गई हैं। आज के बदलते परिवेश और संक्रमित होते जीवन मूल्यों के समक्ष युवा पीढ़ी संकोच से खड़ी है। कहाँ जाएँ? क्या करें? क्या उचित या अनुचित? किन मूल्यों को छोड़े? किसे अपनाए? ऐसे ही अनेकानेक प्रश्नों से युवा पीढ़ी जूझ रही है। ऐसे में माता-पिता अलग हो गए तो युवा पीढ़ी या बच्चे पूरी तरह टूटते हैं। उसे सही क्या है और गलत क्या है इसका एहसास भी नहीं होता। ऐसे अवसर में उन्हें अपनी राह खुद खोजना है, दिशा भी स्वयं तय करना है। यहाँ तन्वी के रूप में चित्रा जी ने ऐसी युवा पीढ़ी को रचा है जो निम्न मध्यवर्गीय परिवार से संबंधित बोल्ड, साहसी परंतु आत्मारत और स्वार्थी है। आधुनिकता की दौर में ये पारिवारिक मूल्यों को तो सीधे नकारने में ही वे अपने आपको गौरवान्वित महसूस करते हैं।

पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, मुक्त जीवन शैली, अर्थव्यवस्था, नवीनता का मोह आदि कारणों से आचार विचार, रीति रिवाज और जीवन मूल्यों में बदलाव हो रहे हैं। इस कारण से विवाहेतर संबंध और लिव इन रिलेशनशिप को स्त्री पुरुष स्वीकृत कर मनमानी ढंग से जीने के लिए तत्पर है।

संदर्भ ग्रंथ

1. पेंटिंग अकेली है, चित्रा मुदगल, पृष्ठ 59
2. साहित्य और मानव मूल्य, डॉ. पशुपति नाथ उपाध्याय पृष्ठ 278

असोसियेट प्रोफसर
श्री सी. अच्चुत मेनन सरकारी कॉलेज
त्रिश्शूर

"द्रोणाचार्य एक नहीं" में अभिव्यक्त दलित चेतना

डॉ. जयश्री.ओ

सारांश : वर्तमान जीवन अनेक प्रकार की विसंगतियों और विड़म्बनाओं से बदहाल हैं, जिनके प्रति समाज का कोई भी प्रबुद्ध सदस्य अनमना नहीं रह सकता। साहित्यकार समाज के प्रबुद्धवर्ग का सबसे अधिक संवेदनशील प्राणी है। अनादिकाल से हिंदू वर्ण व्यवस्था दलितों और पिछड़ों को तहस-नहस कर रही है। वर्तमान सभ्य समाज में अब भी उनकी कोई हैसियत एवं आर्थिक सुरक्षा नहीं है। सामाजिक,घार्मिक और आर्थिक विसंगतियाँ कदम-कदम पर इन्हीं की राह रोकते ही नहीं बल्कि उनके भीतर आत्महीनता का भाव पैदा करता है। वर्तमान दलित साहित्यकार दलित संवेदनाओं के सभी पक्षों का रूबरू चित्रण करके उनमें अपने स्वत्वबोध को जगाने तथा आत्मविश्वास से अपनी अस्मिता की तलाश करने के लिए लगातार प्रेरित करते रहते हैं। प्रसिद्ध दलित लेखक जयप्रकाश कर्दम के शब्दों में-"दलित साहित्य बौद्धिक विकास या मनोरंजन का साधन नहीं सामाजिक परिवर्तन की एक मुहिम है, दलितों की उनकी अस्मिता की पहचान कराने का एक माध्यम है।"[1]

मुख्य शब्द : दलित चेतना-जातिवाद-अस्मिता-हीनभावना-व्यवस्था विरोध-अंबेड़करवादी सोच-

प्रस्तावनाः दलित उत्पीड़न भारतीय समाज का यथार्थ है। समकालीन हिंदी दलित साहित्यकार श्रीमती कावेरी इसी यथार्थ को उसकी असलियत के रूप में अपनी कहानियों में चित्रित करती हैं। वे अपनी कहानियों के माध्यम से न केवल दलित समाज का वास्तविक चित्र खींच लाती हैं बल्कि भारतीय समाज व्यवस्था की पोल भी खोलती हैं। इसका उत्तम निदर्शन है "द्रोणाचार्य एक नहीं' नामक कहानी। इसमें लेखिका शिक्षण संस्थाओं में दलित वर्ग पर हो रहे भेदभाव को दर्शाते हुए उनके विरुद्ध संघर्ष का स्वर उजागर करती हैं। लेखिका ने दलित चेतना से जुड़े विभिन्न आयामों का मार्मिक उल्लेख प्रस्तुत किया हैं। जैसेः

जातिवाद की भावना से अवगतः देश स्वतंत्र होकर पौने शती बीत गयी फिर भी दास्यत्व की शृंखला से हम मुक्त नहीं हो पाये। जातिवाद और वर्णवाद का पहाड़ ताल ठोककर खड़ा है। समाज के सत्ताधारी वर्ग ने अपने शास्त्रों और अपनी नीति के आधार पर इस वर्ग को शिक्षा जैसी मुख्य धारा से वंचित रखा व अपने मनमाने ढंग से उन्हें दण्डित करने में कभी भी नहीं हिचकते थे। दलित छात्रों को उच्च शिक्षण संस्थानो में भी जातिगत भेदभाव का शिकार होना पडता है,क्योंकि उच्च संस्थानों में मनुवादी मानसिकता से ग्रसित सवर्ण लोग ही उच्च पदों पर आसीन हैं। वे नहीं चाहते कि दलित समाज पढ़-लिखकर उन्नति करें, क्योंकि उससे उनके वर्चस्व के खत्मे का भय है। इसका सच्चा चित्रण कावेरीजी ने अपनी कहानी 'द्रोणाचार्य एक नहीं' में किया है। परीक्षा में हमेशा प्रथम आनेवाला दलित छात्र सुवास सदा ही हेटमास्टर की आँखों का काँटा था। क्योंकि कक्षा में अपना बेटा नरेन का स्थान दूसरा है। नरेन के मन में जातिभेद नहीं था। यहीं नहीं वह सुवास का अच्छा दोस्त भी था। लेकिन उस शिक्षित पिता ने ही उसके मन में जातिभेद का बीज बोया। आठवीं कक्षा में नरेन के साथ ही सुवास हाईस्कूल में नाम लिखवाया। क्लास शुरु होने

के पहले दिन से ही नरेन सुवास को जलती नज़रों से देखता। सुवास ने अपने परम मित्र में आये परिवर्तन का कारण पूछा तो उसने साफ कह दिया- "तू पिछड़ी जाति का होकर बोर्ड में प्रथम आया और मैं तृतीय। मेरे माँ-पिताजी कहते हैं कि ऐसी जाति का होकर वह प्रथम आया, अब हाईस्कूल में आये तो देखें। वहाँ बोर्डवाले को क्या पता किस सिंह का बेटा है। आज मैं तुमसे दोस्ती नहीं रखता। मेरे माँ-पिताजी ने मना किया है।"[2] हाईस्कूल की पढाई से ही सुवास को इस जातिभेद का शिकार होना पड़ा। बोर्ड में प्रथम आये सुवास को सवर्ण छात्रों का मारपीट खानी पडती है। प्रायोगिक परीक्षा में जानबूझकर उसका अंक कट किया जाता है। फिर भी कठिन मेहनत करके वह अपने वर्ग से ठगा हुआ उच्च शिक्षा प्राप्त करके डिप्टी कलक्टर का पद हासिल करता है। सवर्ण वर्चस्व वहाँ भी उन्हें नहीं छोडता है उसे जिला आपूर्ति अधीक्षक का पद मिलना चाहिए था। परन्तु झूठे आरोप लगाकर डी.से.से पद अवनत कर सी.ओ पोस्ट पर कर दिया। स्थानातंरण भी वहाँ किया जाता है जहाँ असुविधा ही असुविधा है। इस प्रकार दलित होने के कारण योग्यता के बजाय वंशानुक्रमण से व्यक्ति को नापनेवाले समाज से वह प्रश्न करता है कि " ...इनको ज्ञान गरिमा कहाँ से। स्साले पंडित बनते हैं। उन्हें ये पता नहीं कि पंडित और बाकी कहां से पैदा हुए। चारों वर्ण तो एक ही परिवार का मूल हैं। आज जाति, वर्ण और गोत्र की समस्या इतनी गंभीर हो गयी है कि मैं ही नहीं पूरे संसार वाले लोग इसको लेकर परेशान हैं।"[3] लेकिन युगों से भोग रही इस परेशानी से आज दलित के शिक्षित लोग सतर्क रहे हैं। इसलिए वे अपने वर्ग को चेतावनी देते हैं कि हम लोगों को जातिभेद का चक्रव्यूह तोड़ने के लिए बहुत रास्ता साफ करना है। अतः कठिन मेहनत करो।

अस्मिता की तलाशः भारतीय समाज में सदियों से सामाजिक, आर्थिक सास्कृतिक रू प से उत्पीडित दलितवर्ग नेअपने प्रति होनेवाले जुल्म व शोषण के खिलाफ सवाल-जबाब करना या अपने हक की मांग करना हीन मानते थे। या ये लोग अपनी व्यथा तथा पीड़ा को अपने भाग्य की नियति मानकर चुप रह जाते थे। लेकिन शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार ने इसे सचेत एवं सजग किया है। इन शोषणकारी शक्तियों के खिलाफ आवाज़ उठाने तथा अपने मानवीय अधिकारों व अस्तित्व को हासिल करने की आवश्यकता को उन्होंने समझ लिया है। इसके लिए दलित साहित्यकारों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही हैं। कावेरीजी अपनी कहानी 'द्रोणाचार्य एक नहीं' में यही संदेश देती हैं कि अपने मार्ग में आनेवाले हर अवरोध को पूरी ताकत के साथ झेलना है-"तुम जानती हो कि बाबा साहब को कितना कष्ट सहना पड़ा थाः वे इतने बड़े विद्वान थे फिर भी उनका नाम पत्तों से ढका है। अगर उँची जाति के कहनेवाले परिवार में पैदा होतो तो उनके नाम का तिरंगा आसमान में फहराते रहता। उनकी दया पर ही भारत अखण्ड। अब ज्ञानी समाज में उनकी प्रतिभा छिपी नहीं रह सकती। हमारे बच्चों को उनकी तरह ही कठोर परिश्रम करना है। तभी ख्यादि प्राप्त होगी।"[4]

व्यवस्था के प्रति विद्रोहः कितने ही प्रगतिशील क्यों न बन जाय मगर दलितों और पिछ्डों को मनुष्य नहीं मानने की रीति आज भी चल रही है। उनकी दक्षता को मानने के बजाय उन्हें हीन बनाकर उनका जीवन दूभर करने में लगे रहते हैं समाज के उच्च वर्ग। समत्व का पाठ सिखानेवाले अध्यापक गण भी ज़रा पीछे नहीं। आज दलित वर्ग के छात्र-छात्राएँअपने अधिकारों

के प्रति सजग है। उन्हें किसी द्रोणाचार्य का एकलव्य बनना मंजूर नहीं है। विवेच्य कहानी में दलित छात्र सुवास स्कूल हेडमास्टर द्वारा पिटाई करने और हरामी कहने पर प्रतिक्रिया व्यक्त करता है-"सर हरामी होगा झूठ बोलनेवाले। मैं भीरूएकलव्य नहीं कि आप जैसे द्रोणाचार्य के सामने सब कुछ हार जाउँ। आपके स्कूल में सिर्फ उँचे कहानेवाले ही पढेंगे। मुझे नहीं चाहिए ऐसी पढाई।"[5]

हीन भावना की मानसिक त्रासदी से मुक्ति: वर्णगत ढाँचा जहाँ दलितों को अपने मानवोचित अधिकारों से वंचित रखता है वहीं सामंती ठसक दलितों का शारीरिक और मानसिक उत्पीडन देता रहता है। इसका प्रमुख कारण यह उत्पीडित वर्ग अपने नारकीय जीवन को पिछले जन्मों का कर्मफल मानकर अपने प्रति होनेवाले अत्याचारों को सहकर निरीह पशु के समान जीता है। लेकिन वर्तमान शिक्षित दलित इस भ्रष्ट परिवेश के साथ समझौता करने के लिए तैयार नहीं है। वे जानते हैं कि विपन्नता ही वह विवशता है जिसके कारण व्यक्ति पतित और भ्रष्ट होता है। अतः वर्तमान समय में दलितों ने इसी विपन्नता से ही नवजीवन लेने के संत्रास में है। इसलिए वे समझते हैं कि जहां तक अपनी हीन- भावना को दूर न करें तथा स्वयं मनुष्य होने का अहसास न हों तो हम आगे बढ़ न सके। विवेच्य कहानी में लेखिका समाज में फैले अमानवीय परम्पराओं और जातिवाद के भयावह रूप को प्रस्तुत करने के साथ- साथ इन वर्जनाओं के विरुद्ध आक्रोश का माहौल भी तैयार करती हैं। कठिन मेहनत करके ही सुवास डिप्टी कलक्टर का पद प्राप्त करता है। जातीयता का दंश उन्हें उस उच्च पद पर आसीन होने पर भी नहीं छोडता-"....सुवास कहने पर उन्हें संतोष नहीं होता। आगे यानि आपका टायटिल क्या हैः सुवास सिंह। यदि सिंह है तो आपका गोत्र। गोत्र में यदि पकड पाते हैं तो झट से उनका होंसला खत्म।"[6] ऐसे सामाजिक दुश्चिन्तन पर वह प्रश्न करता है कि "योग्यता आँकनेवाले लोग हैं कहाँः यहाँ तो वंशानुक्रमण लोगों को योग्यता मिलती है। ....क्या दुनिया हैः आदमी से आदमी का रिश्ता नहीं। केवल जाति, धर्म, गोत्र ही सबकुछ है ताजुब्ब है इस बात पर कि जहाँ से बच्चों का नवनिर्माण होता है, भावी जीवन तैयार होता है।"[7]

अम्बेडकरवादी सोच : आज का दलित आंबेडकर के दर्शन एवं चिंतन से प्रभावित हैं। बावा साहब का मूल मंत्र है-शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो एवं 'अप्पो दीपो भव' अर्थात् 'अपना दीपक स्वयं बनो।' जब से दलित शिक्षा को हासिल करने लगे तब से वे आंबेड़करवादी विचारों को आत्मसात् करने लगे हैं। शिक्षा ने उनके अन्दर बैठे हीनताबोध व धर्मशास्त्रों के आतंक को तोड़ लिया। कावेरी जी भी अपनी कहानी 'द्रोणाचार्य एक नहीं' में शिक्षा के प्रति महात्मा फुले एवं बाबा साहेब के दिए गए विचारों का समर्थन करती है। परीक्षा में प्रथम आने के कारण अपना परम मित्र सजातीय बालक नरेन अपने से चिढ़ते समय दलित बालक सुवास के मन में जो आत्महीनता उपज गयी उसे उसने विजय के रूप में परिणत किया। वह पढ-लिखकर बडे अफसर बन गया। उसने अपनी पीढ़ी को भी यह संदेश दिया कि- "हम लोगों को चक्रव्यूह तोड़ने केलिए बहुत रास्ता साफ करना है। तुम जानती हो बाबा साहब को कितना कष्ट सहना पड़ा था। हमारे बच्चों को उनकी तरह ही कठोर परिश्रम करना है। तभी ख्यादि प्राप्त होगी।"8 दर असल में महाभारत में द्रोणाचार्य ने गुरु के शीर्ष स्थान पर बैठकर एक अन्य महत्वपूर्ण दलित कथा को जन्म

दिया था, एकलव्य का अंगूठा ज़बरन कटवाकर, ताकि क्षत्रिय-पुत्र अर्जुन से शूद्र पुत्र एकलव्य आगे न बढ जाए। सवर्ण इतिहास ने इसे एकलव्य का त्याग बताकर सदियों से गुरूके ढोंग को महिमान्वित किया। लेकिन वर्तमान समय में सदियों से उत्पीडित इस दलित वर्ग ने स्वयं समझ लिया कि यह छद्म बेपर्द हो गया। यह वास्तव में सवर्ण के प्रभुत्व कामना ही है। विवेच्य कहानी में सुवास ने स्वयं समझ लिया और अपनी पीढ़ी को चेतावनी भी दिया है कि दुनिया में द्रोणाचार्य एक नहीं हैं।

उपसंहार : यह तर्कसंगत बात है कि जीवनभर सामाजिक विधि व्यवस्था से पीडित अछूत या नीच कहे जानेवाले लोगों में सदियों से संचित विद्रोह की भावना दलित साहित्य द्वारा प्रज्वलित हुई है। दलित साहित्यकार अपनी रचनाओं द्वारा दलितों की व्यथा की कथा मात्र प्रस्तुत नहीं करते बल्कि उनकी अस्मिता और स्वाभिमान को ललकारते हैं। उन्हें अपने पैरों पर खडा करने का जद्दोजहद प्रयत्न करते हैं। कावेरीजी की कहानी 'द्रोणाचार्य एक नहीं' दलित संवेदनाओं के सभी पक्षों को उद्घाटित करती है। एक विशाल जनसमूह को जो सदियों से मनुष्य नहीं बल्कि पशु से काबिल ही समझ जाते रहे हैं उन्हें सामाजिक सरोकार और अधिकार के लिए संवेदनशील बनाने का आह्वान करती है प्रस्तुत कहानी। लेखिका कहती हैं कि मनुष्यों द्वारा निर्मित सवर्ण 'अवर्ण भेद के धब्बे को धोने का समय बीत चुका है। अब तक ईश्वर और नसीब का वास्ता देकर जिसने युगों से दलितों की संवेदना को दमित किया,वह आगे न हो सकेगा। वे अपनी अस्मिता की ओर जागरूक हो गये। सुवास जैसे शिक्षित युवा इसका निदर्शन है। वह अपनी पीढी को चेतावनी देता है कि द्रोणाचार्य एक नहीं। हर युग में एक-एक द्रोणाचार्य रहेगा जिनसे अपनी जाति सतर्क रहे। लेखिका यहाँ सुवास के माध्यम से दलित समाज का वास्तविक चित्र खींच लेने के साथ भारतीय समाज व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य भी करती हैं। लेखिका पूछती हैं कि "भारत माँ यदि तेरे पुत्रों में यदि कूटनीति रही तो तेरा रूप कैसे सही रह सकता है। शोषक विदेशी गये, किंतु अपना मुखौटा छोड़ गये जिसे पहन भारतीय एक-दूसरे का शोषण करने में ही अपनी बुद्धिमानी समझते हैं।" इस प्रकार द्रोणाचार्य एक नहीं कहानी स्थापित व्यवस्था के विरोध में आक्रोश व्यक्त करने के साथ-साथ समाजवाद व ब्राह्मणवाद को सिरे से खारिज कर मानवतावादी व लोकतांत्रिक मूल्यों की तरजीह देती है।

सहायक ग्रंथसूचिः

1. इक्कीसवीं सदी का हिंदी काव्य-डॉ. माधवी जाधव-विद्या प्रकाशन-2013- पृ.सः85
2. दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ-सं.डः.कुसुम वियोगी-कंचन प्रकाशन-2012.पृ.सं.42
3. वही.पृ.सं.41
4. वही.पृ.सं.42
5. वही.पृ.सं.43
6. वही-पृ.सं.44-45
7. वही-पृ.सं.45
8. वही पृ.सं.41-42
9. वही पृ.सं.45

असिस्टेंट प्रोफसर
हिंदी विभाग, यूनिवेर्सिटी कॉलेज
तिरु वनंतपुरम।

स्त्री संघर्ष : केदारनाथ सिंह की कविताओं में

कीर्ती.एस

समकालीन कविता को नई दिशा प्रदान करनेवाले कवियों में प्रमुख हैं केदारनाथ सिंह । उनकी कविताओं में ग्रामचेतना के साथ   साथ नगरीय जीवनबोध भी मौजूद है । क्योंकि उनके जीवनानुभव गाँव से शहर तक बिखरे हैं और इसमें अकेलापन, अर्थ व्यवस्था, संघर्षशीलता आदि का संवेदना का चित्रण है । गाँव की गरीबी से शहरों का तनाव उनकी कविताओं की विशेषता है । इसके साथ स्त्रियों की पीड़ा , कुण्ठा , तनाव आदि को केदारजी ने अपनी कविताओं में कई बार व्यक्त किए ।

नारी दया और करुणा का प्रतीक मानी जाती है। लेकिन हमारी सांस्कृतिक रूढ़ी एवं मान्यताओं के बीच नारी को एक स्वतंत्र अस्तित्व भी नहीं मिल रहा है। सामाजिक दृष्टि से देखा जाय तो नारी का स्थान उन्नत है । वास्तविक रूप में नारी की स्थिति समाज में दयनीय है। भारतीय समाज पुरु ष प्रधान है। पुरुष की दृष्टि और शक्ति के आगे नारी निर्बल हो रही है और वहाँ नारी सिर्फ गृहिणि के पद पर मात्र सीमित हो रही है। पुरुष की उपस्थिति में स्त्री सदा नेपथ्य में रहती है। वर्तमान समाज की स्त्रियों में कुछ बदलाव आया है,वह पुरुष के समान जीवन के सभी पहलुओं जैसे बड़ी बड़ी कंपनी में या सेना- कार्य में अपना हाथ बढाती है । हाँलांकि गाँव में अज्ञान और अंधविश्वास के कारण नारी का जीवन दु:खद है। नारी एक ही समय माता, पत्नी,बहिन,प्रेयसी आदि के रूप में समाज या घर की प्रगति के लिए काम करती थी। ग्रामीण समाज की नारी का संघर्षपूर्ण जिंदगी केदारनाथसिंह ने अपनी कविताओं के ज़रिए प्रकट की है।आवाज़,जो एक स्त्री को जानता है, नमक,तुम आई, टमाटर बेचनेवाली बुढ्यिा, सुई और तागे के बीच, घुलते हुए गलते हुए आदि केदारनाथ सिंह की स्त्री केन्द्रित कविताएँ हैं ।

'आवाज़' कविता की माँ गाँव की एक मामूली नारी है। पति और बच्चों को संभालना, उनके भविष्य के लिए प्रार्थना करना आदि उस माँ की विशेषताएँ हैं। घर में ही रहकर अकेले से सारा काम करके वह थकी हुई हैं।

"चक्की की आवाज़ के पत्थर के नीचे/मुझे होना चाहिए इस समय/जहाँ से /गाने की आवाज़ आ रही थी/यह माँ की आवाज़ है-मैं ने कहा/चक्की के अन्दर माँ थी ।"[1]

स्त्री को कामकाजी के रूप में हर दिन अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ेगा । वह अपने काम में व्यस्त थे, विवशता होने के कारण काम के बीच उस माँ की आवाज़ मुँह से आती थी, इसमें उसकी सारा परेशान भरती थी । लेकिन चक्की का शब्द और पीसने आटे की गन्ध के आगे माँ की आवाज़ पतली हो गयी । ऐसी थकी हुई आवाज़ देर रात तक चलती रहती थी । समाज के सारे नियम ,कानून आदि नारी के लिए बने हुए हैं , लेकिन भारतीय नारी की स्थिति ऐसी थी कि वह घर के दीवारों में बाँध रहकर सारी जिंदगी बिताती थी।

'नमक' नामक कविता में कवि सिर्फ नमक के द्वारा स्त्रियों की अस्मिता या अस्तित्वबोध का संघर्ष प्रस्तुत करते हैं । कविता के आरंभ में कवि नमक को इस प्रकार स्वागत करता है कि नमक शहर से गुज़रकर चुप-चाप एक घर में प्रवेश कर चूल्हे के पास जाकर

वहाँ से दाल सब्जी में घुल मिल जाता है। इसके बाद खाने के वक्त पर परिवारवाले नमक पर अधिक खुश होते हैं । नमक से कवि की दृष्टि बदलती है कि-

"कि ठीक उसी समय /पुरुष जो कि सबसे अधिक चुप था/ धीरे से बोला/दाल फीकी है /फीकी है ?/ स्त्री ने आश्चर्य से पूछा/हाँ फीकी है-/ मैं कहता हूँ दाल फीकी है/ पुरु ष ने लगभग चीखते हुए कहा"[2]

यहाँ नमक के स्वागत केवल मात्र विश्लेषण ही नहीं, बल्कि एक स्त्री के मन के संघर्ष का भी उदघाटन किया गया है। वहाँ के पुरुष क्रोध से चिल्लाते हैं कि दाल फीकी है। नारी यहाँ उत्तर के रूप में या स्वयं अपराधबोध में पड़कर उसके आगे चुप से रहती है। ऐसी औरतों के बारे में तस्लीमा नसरीन ने कहा है कि "स्त्री के लिए पति नामक वस्तु बहुत मूल्यवान है। अर्थात पुरुष यदि वृक्ष है तो नारी उसके साथ लिपटी परजीवी लगा। वृक्ष के सहारे के बिना जिसप्रकार लता नहीं रह सकती, उसी प्रकार पुरुष के आश्रय के बिना नारी का जीवन अंसभव है।"[3] इस छोटी सी बात पर पुरुष नारी पर वह अपना अधिकार स्थापित करता है। पुरु ष के एकाधिकार का भाव यहाँ है। एक छोटी से घटना के लिए स्त्री को दोष देना या उसपर अधिकार करना क्रूरता है। स्त्री की यह चुप्पी की दहाड़ उसके अंतर मन में सदा खींचती होगी।

केदारजी ने की एक और कविता 'तुम आई' में प्रेम के विभिन्न भावों का चित्रण एक स्त्री के माध्यम से प्रकट किया है । जैसे :

"तुम आई / जैसे धीमियों में धीरे धीरे / आता है रस/जैसे दाने अलगा जाते हैं भूसे से/ तुमने मुझे खुद से अलगाया"[4]

प्रेम का आदि में परिचय करना, फिर मिलना और अंत में बिछुड़ना दुःख और वेदना भी है। कुछ समय के लिए कवि की जिंदगी में आई और जल्दी से बिछुड़ गयी उस स्त्री पर आपने लिखा है। केदारजी ने छोटे -छोटे शब्दों के माध्यम से स्त्री के सभी गुणों से हँसना, दिखना, चलना आदि को कविता में उजागर किया है। स्त्री को एक कठोर परिश्रमी के रू प में चित्रित करनेवाली कविता है - "सुई और तागे के बीच में/ जब वह बहुत ज़्यादा थक जाती है/ तो उठा लेती है सुई और तागा/ मैंने देखा है कि जब सब सो जाते हैं / तो सुई चलानेवाले उसके हाथ/ देर रात तक"[5]

स्त्री अपने परिवार का सारा काम अकेले करके थकी गयी है । यहाँ व्यक्त है कि वह कितने बोझिल और थकी है , फिर भी वह कभी खाली नहीं बैठती। आधी रात में भी वह उस बोझिल स्थिति को भूलकर सुई और तागा लेकर बैठ जाती है । यहाँ कवि ने अपनी माँ के द्वारा संपूर्ण स्त्री समुदाय का प्रतिनिधित्व करने का प्रयास किया है। यह माँ कैसे अपने परिवार को संभालती है, इसका चित्रण इस कविता में मिलता है । रात होने पर भी नारी को विश्राम करने के लिए कोई मौका नहीं मिला । थकी से उसका सिर झुका जाता है। कविता में व्यक्तहोनेवाली नारी परिश्रमशाली है। देर रात होने पर वह अपनी बोझिल स्थिति को भूलकर सिलने के लिए बैठ जाती है। घर को संभालने के लिए स्त्रियों को कितना कष्ट उठाना पड़ेगा, इसका चित्रण इस पंक्तिओं से मिलता है। स्त्रियों को अपनी इच्छानुसार जीने के लिएआर्थिक अनिवार्य है और अर्थ की बल पर स्त्री जीवन खुशहाल होता है। प्रमुख नारीवादी लेखिका सीमोन द बोआ मानती है - "मतदान और अन्य तमाम नागरिक अधिकारों के बावजूद आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में स्त्री की स्वतंत्रता सिर्फ अमूर्त और सैद्धातिक रह जाती है।"[6] सीमोन औरत की स्वतंत्रता को सही स्वतंत्रता मानती है ।

महिलाओं का महत्व भारतीय समाज में सबसे उँचा है, लेकिन अभी तक उनको कोई अस्तित्व नहीं था। आज के पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं पर किए अत्याचारों के द्वारा स्त्रियों की सत्ता का शोषण किया है। स्त्रियाँ समाज के नियमों का अनुसरण कर अपनी इच्छाओं को तोड़कर अपनी पूरी जिंदगी को बलिदान किया। नारियाँ अपनी अस्मिता केलिए पुरातन काल से ही संघर्ष करती आ रही है। वह सघर्ष आज भी चल रहा है। पुरुष प्रधान समाज में नारी को संघर्ष करने के या अपनी भूमिका में भी खड़े होकर प्रतिरोध करने की कोई मौका नहीं मिला। केदारजी सामान्यतः गाँव में जीवन व्यतीत करती नारी को अपनी कविता में अधिक प्रयुक्त किया है। गाँव की अभावग्रस्त स्त्री की जिंदगी के साथ गरीबी का चित्रण भी उन्होंने किया। ऐसी एक कविता है - "घुलते हुए गलते हुए, इसमें गाँव की सहज जीवन शैली दर्शाया है।/ सहसा बौछारों की ओट में/ दिख जाती है एक स्त्री/ उपले बटोरती हुई"[7]

एक ग्रामीण स्त्री की जिंदगी में गरीबी की समस्या कैसे पड़ेगी , इसका मार्मिक चित्रण इसमें है। उपले बटोरती हुई स्त्री से अपना सर्वस्व बचाने की कोशिश करनेवाली स्त्री के मन-संघर्ष का चित्रण यहाँ अभिव्यक्त है। अपने परिवार के लिए सब कुछ सहना स्त्री जीवन का यथार्थ मानते हैं । स्त्री स्वयं घुलकर व पिघलकर अपना अस्तित्व को मिटा देती है। कवि अपनी माँ, पत्नी, पुत्री से स्त्रियों की संघर्ष-भरित जदिगी को कविता में उल्लेख करने का प्रयास किया है।

"बाघ' कवि की चर्चित खण्ड काव्य है। यहाँ 'बाघ' एक प्रतीक है - सत्ता या आज के लोकतंत्र का। यह कथा कवि एक स्त्री के द्वारा बताना चाहते हैं।

"मैं एक स्त्री को जानता हूँ / जो एक छोटे से शहर में रहती थी/उसके पास ढेरों कहानियाँ थी/ बाघ के बारे में और नदियों के बारे में। / जिनके नाम किताबों में नहीं कहीं मिलते"[8]

कविता में प्रयुक्तकिए स्त्री से कवि बहुत परिचित है कि वह कोई दादी या नानी है, जो बच्चों की कहानी सुनानेवाली। स्त्रियों के माध्यम से सुननेवाली कहानी निश्चय ही सार्थक और दृढ होने की संभावना है। प्रतीकों के द्वारा कविता करने में केदारजी अग्रगण्य है। कभी -कभी हमको पढ़ते समय अर्थ में उलझना आ जाएगा। इसका उदाहरण जो एक स्त्री को जानता है कविता में मिलता है।

"हवा को बहने दो/और उस स्त्री को भूल जाओ/ जिसे तुम प्यार करते थे"[9]

अपनी प्रेमी को भूलने के लिए यहाँ प्रेरणा देती है । स्त्री की तुलना प्रकृति के पेड़-पौधे हवा, नदी से करते हैं । क्यों एक स्त्री से प्रेम करना और भूलने के लिए प्रकृति की वस्तुओं के साथ तुलना की जाए? नीलाभ मिश्र कहते हैं कि "वस्तु जगत के जैविक ज्ञानेंद्रिय संवेदनों के माध्यम से ही मनुष्य का मनोलोक भी निर्मित होता है। अंतर्जीवन का परनिर्भरता का बोध जो एक स्त्री को जानता है कविता में स्पष्ट है।"[10] इस पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को पुरुष ने अपने बनाए नियमों का अनुसरण करनेवाली एक वस्तु मात्र समझा है ।स्त्री का अपना ही अधिकार, अस्तित्व, इच्छा है, लेकिन स्त्री को एक मनुष्य भी समझने का मन पुरुष को नहीं है।

नारी के प्रति समस्त शोषणों के अलावा आर्थिक

निर्भरता उनकी आत्मरक्षा का प्रश्न है । 'टमाटर बेचनेवाली बुढ्या' की स्त्री अपनी वृद्धावस्था की विवशता को छोड़कर अर्थ के लिए सामान बेचनेवाली स्त्री के रूप में समाज में आए हुए थे।

गहरे सुर्ख टमाटर/उसकी टोकरी में भरे हैं /धूप टमाटरों को /चाकू की तरह चीर रही है / टमाटरों के अन्दर बहुत सी नदियाँ हैं/और अनेक शहर जिन्हें बुढ्या के अलावा/कोई नहीं जानता"[11]

आर्थिक की स्वतंत्रता या अर्थ के प्रति स्त्री की परेशानी यहाँ व्यक्त है । स्त्री को लक्ष्मी के पद पर स्वीकारने के बदले पुरुष नारी को गृहस्थ बन्दी बनाकर रखता है। डॉ .रघुनाथ देसाई लिखता है कि - "नारी समाज की महत्वपूर्ण इकाई है ।वह समाज की उन्नति-अवनति का प्रतीक है,तथापि सदियों से उसे गौणत्व प्रदान कर अनेक बंधनों में जकड़कर अबला बनाया गया है।"[12] नारी की सामाजिक महत्व को कभी समाज नहीं समझेगा,यदि परिवार के पति या पिता नारी को महत्व दिए हैं,तो तब स्त्री सामाजिक स्तर में भी नारी का महत्व बढ़ता है। समाज में नारी को अपना अस्तित्व के बिना पिघलते हुए सारी कष्टताओं को भोगना पड़ेगा।

अस्तित्वबोध स्त्री के आत्माभिमान की लड़ाई है । पितृसत्ता के दमन के आगे स्त्री को चुप रहने के बदले कुछ करने का साहस नहीं था। नारी के अभाव में मानव जीवन अपूर्ण या समाज शुष्क है। क्योंकि नारी समाज का एक अभिन्न अंग है । सुख और समृध्दि का प्रतीक है । परिवार, समाज राष्ट्र के निर्माण के लिए उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। माता,पत्नी, पुत्री ,बहिन तथा कई रूपों में नारी अपने दायित्व का निर्वाह करती है।

केदारजी ने स्त्री के विभिन्न रूपों का उल्लेखन अपनी कविताओं में किया है। कभी प्रेयसी के,कभी माँ के, कभी पुत्री के, कभी गृहिणी के रूप में। उनकी कविता में व्यक्त स्त्रियाँ पीड़ित और कामकाजी है। इसलिए भी उनकी कविताएँ सबको प्रभावित और प्रेरित करती है और इसी कारण से उनकी कविताएँ प्रासंगिक हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1) आवाज़, प्रतिनिधि कविताएँ-केदारनाथसिंह, पृ. 81
2) नमक, उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ - केदारनाथसिंह, पृ-19
3) औरत के हक में - तस्लीमा नसरीन, पृ -60
4) तुम आई, प्रतिनिधि कविताएँ - केदारनाथसिंह, पृ-93
5) सुई और तागे के बीच में, यहाँ से देखो - केदारनाथसिंह, पृ- 61
6) स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ - रमणिका गुप्ता, पृ -59
7) घुलते हुए गलते हुए, अकाल में सारस-केदारनाथसिंह, पृ-49
8) बाघ-केदारनाथसिंह, पृ-26
9) जो एक स्त्री को जानता है , ज़मीन पक रही है - केदारनाथसिंह, पृ-61
10) उत्तर केदार - सुधीश पचौरी पृ-250
11) टमाटर बेचनेवाली बुढ्या, प्रतिनिधि कविताएँ-केदारनाथसिंह ,पृ.84
12) हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में समाज-रघुनाथ देसाई, पृ.94

शोधछात्रा

एम.जी. कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में दलित नारी संघर्ष

पद्मप्रिया.वी

समाज के निर्माण के लिए एक दूसरे के पूरक है पुरुष और नारी। भारतीय संस्कृति में नारी को निम्नतम स्थान दिया गया है। आज 21 वीं शदी में भी नारी अत्याचार की घटनाओं में कमी नहीं आई है।स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण अबला, निर्णय क्षमता से हीन, उपभोग्य और परावंलबी के रूप में रहा है। नारी सामाजिक स्थिति से संपूर्ण समाज प्रवाहित होता है , नारी की उन्नति / अवनति का इतिहास समस्त समाज की उन्नति / अवनति का इतिहास बन जाता है। नारी का शोषण दैहिक, आर्थिक, शैक्षिक , मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक स्तरों पर किया जाता है। दलित नारी चौगुना शोषण की शिकार हैं। दलित होने के कारण, नारी होने के कारण और उस पर भी दलित नारी तथा चौथा गरीबी के कारण। दलित नारी जन्म से लेकर मृत्यु तक जो पीड़ा, घुटन, अत्याचार, दुख, दर्द, उपेक्षा को सहती रही है।

21 वीं सदी से सबसे महत्वपूर्ण विधा है आत्मकथा। हिंदी की प्रारंभिक आत्मकथाओं में आनंद, हर्ष, मनोरंजन , उल्लास वैभव को महत्व प्रदान किया गया है। दलित रचनाकार आत्मकथा शैली में जब भोगी गई पीड़ा से व्यक्तकरता है तो उसमें अनुभव की प्रामाणिकता का आ जाना स्वाभाविक है। जिस प्रकार हिंदी का दलित साहित्य मराठी भाषा से प्रभावित और प्रेरित है उसी प्रकार आत्मकथाएं भी। समकालीन दलित आत्मकथाओं में गरीबी , कुव्यवस्था के साथ शोषण, अत्याचार की विभिन्न रूपों के चित्रण हैं।

मोहनदास नैमिशराय का अपने अपने पिंजरे, ओमप्रकाश वाल्मीकि का जूठन, शौराजसिंह बेचैन का मेरा बचपन मेरे कंधों पर, तुलसीराम का मुर्दहिया, उमेश कुमार सिंह का दुख सुख के सफर में, सूरजपाल चौहान का तिरस्कृत आदि महत्वपूर्ण आत्माकथाएँ हैं।

हिंदी में दलित महिलाओं की दो आत्मकथाएं ही नजर आती हैं। पहला कौशल्या बैसंत्री की दोहरा अभिशाप दूसरा सुशीला टाकभौरे की शिकंजे का दर्द।

शिकंजे का दर्द 'दलित नारी के शोषण के विरुद्ध संघर्ष गाथा है, इसमें नारी के दोहरे संघर्ष को दिखाया गया है, एक दलित के रूप में दूसरा स्त्री के रूप में। लेखिका ने तीन पीढियों की स्त्रियों के वर्णन द्वारा अपमान, तिरस्कार और उपेक्षा के तीन विकासात्मक आयामों के चित्रण आत्मकथा में किया है।

शिकंजे का अर्थ एक प्रकार प्राचीन काल के दबाने का यंत्र है। जिसमें अपराधी की टांग कस दी जाती है। जिस तरह किसी ताकत को शिकंजे में जकड़कर उसकी पूरी ताकत को नगण्य बना दिया जाता है, उसी तरह लेखिका को भी सामाजिक जीवन की मनुवादी विषमता, वर्णवादी - जातिवादी समाज व्यवस्था ने शिकंजे में जकड़कर रखा , जिसका परिणाम पीडा, दर्द, छटपटाहट के सिवा कुछ नहीं है।

'शिकंजे का दर्द' में संताप है, दलित होने का,नारी होने का। इसमें शोषित, पीड़ित, अपमानित दलित जीवन की व्यथा है। हमारे देश हो या विश्व के अन्य देश, हर जगह शोषण,उत्पीड़न का शिकार स्त्री ही रही है। जिस देश में वर्णभेद, जातिभेद की कलुषित परंपराएँ हैं, वहाँ दलित स्त्री शोषण की व्यथा और भी गहरी हो जाती है।

भारत में हर गांव में दलित बस्ती एक तरफअंतिम छोर पर होती है। सुशीलाजी की बस्ती भी गांव के अंतिम छोर पर थी। समाज में उंच-नीच, छुआछूत की भावना सर्वत्र विद्यमान थी। सुशीला जी जहां रहती थी

वहां सवर्ण लोगों के घर गाँव के उपर की ओर थे। दूसरी ओर पिछड़े दलित मजदूरों की बस्ती थी। अछूत जाति के लोगों को समाज व्यवस्था के नियम के अनुसार गांव के बाहर बसाए जाते थे। हिंदू महाजनों की बस्ती से दूर कच्चे खपरैल घर।"[1] समाज के शिकंजे का पहला दर्द था।

सवर्ण समाज के लोग दलित समाज से घृणा करते हैं तथा उनके प्रति निर्ममता तथा क्रूरता का व्यवहार करते हैं। जाति के कारण अपमानित होने में बहुत बड़ा दर्द है।

बाल्यावस्था की चर्चा करते हुए हिंदू धर्म की अनुदारता पर लेखिका का आक्रोश ,जातीय अपमान की गहन अनुभूति से शब्दों में फूट पड़ा है - ' हिंदू धर्म में नदी, पहाड़, पेड़, पौधे,जानवर सभी को महत्व और सम्मान दिया जाता है। लेकिन अछूत मनुष्य को कोई स्थान नहीं कोई सम्मान नहीं। हिंदू धर्म के आडंबर में मिट्टी से बने पुतलों को भी भगवान की तरह पूजा करता है। मगर इंसान को इंसान नहीं मानते। यह हिंदू धर्म की विडंबना है ,हिंदू संस्कृति का कलंक है।"[2]

सुशीला जी ने ऐसे अनुभव अपनी जिंदगी में भोगे हैं। जहाँ मानव को एक कुत्ते का भी दर्जा नहीं दिया जाता। एक दिन सुशीला की सास का देहांत हो जाने पर उनको देखने कोई नहीं आया , वही एक उच्च वर्ग के परिवार में कुत्ते की मौत पर लोग सांत्वना देने जाते हैं। सिर्फ जाति के कारण ही एक मनुष्य कुत्ते के बराबर भी नहीं हो सका।

दलित,मनुवादियों की नजरों में इंसान नहीं था। अछूत होने के कारण उन्हें हर जगह अपमानित किया था। सुशीला जी का नाम स्कूल में लिखवाया जाता है , वहीं दूसरी ओर उनका अछूत जातिभेद, वर्णभेद का दौर शुरू होता है। स्कूल में शिक्षक और विद्यार्थी सभी छुआछूत का पालन करते थे।

कक्षा में ब्राह्मण बच्चों को सबसे आगे बैठाया जाता था। पिछड़ी जाति के बच्चों को पीछे बैठना पड़ता था। सुशीला जी कहती है कि एकदिन मैं सबसे आगे की पंक्ति में बैठ गई। उस दिन मुझे सब कुछ अच्छा लग रहा था। लेकिन जैसे ही गुरु जी की नजर मुझ पर पड़ी तो वह जोर से चिल्लाई ' सुशीला तुम आगे क्यों बैठी हो? तुम को सबसे पीछे बैठना चाहिए।"[3]

स्कूल में सवर्ण बच्चों और शिक्षक भी सुशीलाजी के साथ दुर्व्यवहार करते थे। एक पढे - लिखे शिक्षक भी मनुवादी सोच को दर्शाती है। कक्षा में शिक्षक हमेशा सवर्ण बच्चों पर ही ध्यान देते थे। दलित बच्चों को हमेशा हेय दृष्टि से देखते थे।

आगे की पंक्ति में सवर्ण बच्चे बैठे थे और पीछे पंक्ति में दलित बच्चे बैठे थे। एक दिन सुशीलाजी कक्षा में आगे बैठ जाती है, तो गुरु जी उनको डांटकर कहते हैं - ' सुशीला तुम आगे क्यों बैठी हो? तुम्हें सबसे पीछे बैठना चाहिए।"[4]

क्या शिक्षा लेने में भी दलित और सवर्ण का स्थान अलग-अलग होता है। इस तरह शिक्षकों की उपेक्षा और अपमान के कारण दलित बच्चे शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। इस प्रकार भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों को शिक्षा पाने से रास्ता बंद रहे हैं।

सुशीला जी के परिवार ने अच्छी तरह यह समझ लिया था कि जातिभेद, छुआछूत, मनुवादी शोषण से मुक्ति पाना है तो सब कुछ भूल कर अपमान, उपेक्षा, प्रताड़ना उलाहना, सहते हुए भी शिक्षा ग्रहण करनी ही होगी। लेखिका की बस्ती के लोग अक्सर कहते थे "कब तक लड़की को पढ़ाओगी? क्या ऐसे ही बूढी कर लोगे, शादी-ब्याह की फिक्र करो। शादी हो जाती तो अब तक लड़की एक - दो बच्चों की माँ बन गई होती।"[5]

ऐसी शिक्षा विरोधी वातावरण को नकारते हुए माँ कहती थी-" शादी भी कर देंगे। अच्छा पढ़ा लिखा तो अच्छी नौकरी वाला लड़का मिलेगा। तभी शादी

करेंगे। तब तक पढती है तो पढ़ने दो, पढ़ाई करके आगे चलकर वह भी अच्छी नौकरी करेगी।"[6]

सुशीला जी को स्कूल से लेकर कॉलेज और अध्यापिका बनाने के बाद तक जातिभेद का लगातार सामना करना पड़ा और हर बार संघर्ष करती रही।

शिक्षा ही एकमात्र हाथियार रहा है, जो दलितों की स्थिति बेहतर बना सकती है। लेकिन दलितों को शिक्षा इतनी आसानी से नहीं मिलती। कागज - कॉपी खरीदना भी दूर की बात, दो वक्त की रोटी भी ठीक से नसीब नहीं होती थी। ऐसे वातावरण में शिक्षा ग्रहण करना कितना मुश्किल है? तो भी शिक्षा ही एकमात्र ऐसा साधन है, जिसे पाकर दलित आगे बढ़ सकते हैं। शिक्षा के बिना कुछ भी संभव नहीं है।

समाज में छुआछूत की भावना सर्वत्र विद्यमान थी। दलित जाति की दशा जानवरों से भी बदतर थी। सुशीलाजी अपनी आत्मकथा में लिखती है- 'ब्राह्मण जाति के लोग जानवर पाल सकते। लेकिन किसी गरीब के बच्चों को गोद लेकर नहीं पाल सकते थे। वे इतनी छुआछूत करते है कि दलितों की छपा से भी दूर रहते हैं।"[7]

जहाँ मानव को एक कुत्ते का भी दर्जा नहीं दिया जाता।

दलित, मनुवादियों की नजरों में इंसान नहीं था। अछूत होने के कारण उन्हें हर जगह अपमानित किया था।सुशीलाजी कहती है नानी गंदगी साफ करती है।इसलिए हमें सम्मान नहीं मिलता, अपमान भी सहना पड़ते हैं।

नानी मौसम की परवाह किए बिना काम करती थी। बरसात में गंदा उठाना, टोकरे में भरना, सिर पर रखना, सिर पर रखकर कचरा दूर फेंकना आदि अमानवीय कृत्य से दुखी होकर कहती थी - 'तेरी ही करतूत है भगवान! जाति व्यवस्था क्यों बनाई? हम ही क्यों करें ये नरक सफाई का काम।"[8]

6 मार्च 1974 में नागपुर के सुंदरलाल टाकभौरे से विवाह हुआ। 20 साल का अंतर होने से, यह एक अनमेल विवाह था। नया सपना लेकर ससुराल में आई सुशीला को एक ओर शिकंजे का दर्द भोगना पडती थी।

पति का मारना-पीटना पुरुष सत्ता का प्रदर्शन था। वह पति का अधिकार माना जाता है। सुशीला जी का पति भी शिक्षित और नौकरीपेशा इंसान था। फिर भी पत्नी पर तरह तरह का अत्याचार करना आम बात मानी जाती है। पत्नी पर हाथ उठाना पति का अधिकार माना जाता है।

कितनी भी पढ़ी-लिखी स्त्री हो, क्योंकि लड़कियों को एक ही बात सिखाया जाता था पति परमेश्वर होता है। स्त्री जाति संस्कार गत रूप से पितृसत्तात्मक व्यवस्था की शिकार रही है। सुशीला जी आर्थिक शोषण और घरेलू हिंसा की शिकार थी।

सुशीला जी ने इससे एक सम्मान की जिंदगी के लिए संघर्ष करने लगी। एक बार फ्लैट उनके नाम से ही खरीदा गया। एक बार खर्च लेकर जवाब-तलब करने पर पति ने चप्पल उठाई तो वही चप्पल सुशीलाजी ने भी उठा ली। पत्नी का यह रौद्र रूप देखकर पति सन्न रह गया और उस दिन से उसका व्यवहार परिवर्तित हो गया। आत्मविश्वास प्राप्त कर सुशीलाजी ने पति की सत्ता को कमजोर कर दिया और अपना वेतन और पासबुक खुद रखने लगी। पति की दासता से मुक्त होकर धीरे-धीरे अपना निर्णय स्वयं लेने लगी।

सुशीलाजी ने अपने जीवन में संघर्ष करके समाज के सामने एक नई मिसाल दी है। वह लिखती है - ' मैंने अपने जीवन में अनेक समस्याओं का सामना किया है। पुरुषों की अपेक्षा नारी अपने जीवन में अधिक समस्याओं का सामना करता है। इन समस्याओं से डरकर यदि वह प्रगति -पथ से पीछे हटेगी, तो सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगी। जीवन को संघर्ष

मानकर , अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना ही जीवन में विजयी होना है।"[9]

सुशीलाजी की आत्मकथा एक अनोखी रचना है। शिकंजे का दर्द की लेखिका का संघर्ष समाज के हर वर्ग से था। जहाँ पारिवारिक परिस्थिति भी कमजोर होते हैं वहां संघर्ष दुगुना हो जाता है। लेखिका को जातिगत भेदभाव से भी गुजरना पड़ा। पुरुष सत्ता प्रधान समाज में नारी शोषण उजागर होता रहा है। नारी शिक्षित होकर अपने अधिकारों को पा सकती हैं, अपने स्वामित्व की माँग कर सकती है। अपनी स्वतंत्रता खुद चुन सकती है। 'शिकंजे का दर्द' में सुशीलाजी ने शिकंजे का दर्द भोगा और शिक्षित होकर उससे मुक्त होने का प्रयास किया।

वह समझ गई है कि मनुवादी गुलामी से निकलकर स्वयं और समाज का विकास करना है तो समाज में परिवर्तन की लहर लानी होगी। यह परिवर्तन शिक्षा रूपी हथियार से आएगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.शिकंजी का दर्द - सुशीलाटाकभौरे - पृ. स. 3
2. शिकंजी का दर्द - सुशीलाटाकभौरे - पृ.स.51
3.शिकंजी का दर्द - सुशीलाटाकभौरे - पृ स.22
4. शिकंजी का दर्द - सुशीलाटाकभौरे- पृ. स.22
5.शिकंजी का दर्द - सुशीलाटाकभौरे - पृ.स.107
6.शिकंजी का दर्द - सुशीलाटाकभौरे - पृ. स.9
7.शिकंजी का दर्द - सुशीलाटाकभौरे - पृ.स.47
8.शिकंजी का दर्द - सुशीलाटाकभौरे - पृ.स. 16
9.शिकंजी का दर्द - सुशीलाटाकभौरे - पृ. स.9

शोधछात्रा, हिंदी विभाग
सरकारी आर्ट्स & साइंस कॉलेज, कालिकट
Mobile: 8086684083
E-mail: kadalkannaki@gmail.com

कविता

युवा पीढ़ी

ज्योति चेल्लप्पन

चरस गांजा व लत शराब की
डूबी, युवा पीढ़ी आज की
खबर न जिन्हें दिन रात की
रहता मस्त जो धुन में अपनी ।

शराब के नशे में चूर,
गया सब नातों को भूल ।
निभा न सका लाज राखी की
दुलार माँ का भी गया भूल ।

दस माह जिस माँ ने अपनी
कोख में, देकर खून है पाला ।
भूल गयी सब दर्द वह अपना
देख लाल का मुख वह भोला ।

उस भोले बालक ने ही,
कदर न जानी उसके अरमानों की
इक बोतल शराब के वास्ते ही,
कर दी ममता,हवाले शैतानों की।

जिसके आने की खुशी में,
पिता ने किया घर को उजियारा।
उसने ही शराब की लत में,
सर पर उसके कुल्हाडा दे मारा।

आज की हालत पर,
रोता क्यों है इंसान?
अन्याय,अनीति, अत्याचार
है सब का जिम्मेदार तू इंसान ।

जि. एच. एस. एस तष़वा

मानवीय संबंधों का यथार्थवादी चित्रण भीष्म साहनी की कहानियों में

डॉ.रीनाकुमारी.वी.एल

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी साहित्य को जिन रचनाकारों ने अपनी सार्थक रचनाशीलता के माध्यम से एक व्यापक फलक प्रदान किया, उनमें भीष्म साहनी का महत्वपूर्ण स्थान है। समाज में क्या हो रहा था,क्यों हो रहा था, किसके उपर हो रहा था आदि सभी बातों को साहनी ने अपने कथा साहित्य में उकेरा है। उनकी सभी रचनाओं में भी समाज का एक यथार्थवादी चित्रण हमें देखने को मिलता है। भीष्म साहनी ने स्वयं लिखा है- "साहित्य के क्षेत्र में भी मेरा अनुभव वैसे ही स्पष्ट और सीधे-सादे रहे, जैसे जीवन में। मैं समझता हूँ -अपने से अलग साहित्य नाम की कोई चीज भी नहीं होती,जैसा मैं हूँ, वैसे ही मैं रचनाएं भी रच पाउँगा ।मेरे संस्कार,अनुभव, मेरा व्यक्तित्व, मेरी दृष्टि सभी मिलकर रचना की सृष्टि करते हैं। इनमें से एक भी झूठ हो, तो सारी रचना झूठी पड़ जाती है।"[1]

यथार्थ समाज और देश के इतिहास से जुड़ी हुई वस्तु है जो मनुष्य को अपने देश व समाज के प्राचीन इतिहास की सर्वोत्तम परंपराओं से भी जोड़ता है तथा उससे शक्ति एवं प्रेरणा लेकर आज की वास्तविकताओं को उद्घाटित करके इतिहास के आगे ले जाती है। वस्तुतः यथार्थवाद एक गहरी सौंदर्यमूलक, संवेदनात्मक एवं ऐतिहासिक दृष्टि होती है, जो एक ओर रचनात्मक स्तर पर अपने इतिहास को मनुष्यता के विकास से जोड़ती है और दूसरी ओर समसामयिक समाज की आशा-आकांक्षाओं, दुख, पीड़ा, अभाव, अन्तर्विरोध, जिजीविषा, संघर्षों तथा उसकी जीत और पराजयों के चित्रण में भी परिवर्तन को प्रगतिशील शक्तियों का अन्वेषण करती है और उनको बल प्रदान करती है।

समकालीन कहानीकारों में भीष्म साहनी एक ऐसे कहानीकार हैं, जिन्होंने जनसामान्य के जीवन और संघर्ष का यथार्थ चित्रण अपनी कहानियों में किया है। वे जीवन भर एक आम आदमी की हैसियत से जीते रहे, इसलिए इनकी कहानियाँ देश के पीड़ित,शोषित,दलित और मजदूरों के जीवन के यथार्थ के साथ जुड़ी रहीं। वर्तमान जीवन की वास्तविकता को इन्होंने अपनी कहानियों में चित्रित किया है। वस्तुतः जीवन के यथार्थ को ही भीष्मजी ने महत्वपूर्ण माना। उनकी कहानियाँ जिस यथार्थ का आकलन करती है, वे प्रायः रोजमर्रा की छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से चित्रित करते हैं।अपनी आँखों से जो कुछ देखा और अनुभव किया उनको भीष्म जी ने अपनी कहानियों द्वारा चित्रित किया है। इसके अलावा विभाजन की त्रासदी के साथ टूटते मानवीय मूल्यों, घुटन,बिखराव ,जीवन की अकुलाहट, छ्टपटाहट, पारिवारिक संबंधों का बिखराब, स्त्री-पुरु ष संबंध,नारी शोषण आदि निम्न तथा मध्यवर्गीय पारिवारिक समस्याओं को पूरी जीवन्तता के साथ अपनी कहानियों में उकेरा है। प्रताप ठाकुर की राय में भीष्म साहनी की रचना का यथार्थवाद एक ओर सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं को प्रभावशाली रूप प्रदान करता है, दूसरी ओर चेतना का संस्कार देता है। इनके कथा

यथार्थ में वस्तुओं, घटनाओं और पात्रों के आन्तरिक संबंधों का निर्वाह हो सका है ,इसलिए संदर्भ संघटन और दृष्टांत संयोजन में कहीं कोई त्रुटि नजर नहीं आती।"[2]

भीष्मजी अपनी कहानियों में भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति से प्रभावित होकर मानवीय मूल्यों को स्वीकारते हुए आधुनिकता को अत्यधिक महत्व देते हैं। लेखक जानते हैं कि आधुनिकता के मोह में छोटे-छोटे गाँवों से लेकर नगरों और महानगरों में जीवन के आदर्श, धर्म, नैतिक मान्यताएँ बिखरती जा रही है। जिन कठिन स्थितियों से आज का आदमी गुज़र रहा है और जिन अंतर्विरोधी जिंदगी की पीड़ाओं को लेकर जी रहा है , भीष्म जी की कहानियाँ उसी जिंदगी के जीवन मूल्य और मानवीय संबंधों की खोज है।

भीष्म साहनी की बहुचर्चित कहानी है- 'चीफ की दावत'। इसमें लेखक ने वर्तमान जीवन में हो रहे प्राचीनता के नकार को बड़ी मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है। किस प्रकार से जीवन में मूल्य और मान्यताएँ बदलते हैं, इसे ' चीफ की दावत' कहानी में स्पष्ट किया गया है। मध्यवर्ग के मूल्यहीनता और खोखलेपन ही इस कहानी में व्यक्त हुआ है। वर्तमान जीवन में रिश्ते नाते और संबंधों की पहचान भी समस्या बनती है। यही इस कहानी का मूलबिंदु है।

इस कहानी का नायक श्यामनाथ अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए आफिस के चीफ को दावत देता है। श्यामनाथ और उसकी पत्नी शोभा घर के फालतू सामान को अलमारियों के पीछे और पलंग के नीचे छिपाते हैं। तभी श्यामनाथ के सामने एक समस्या खड़ी हो जाती है कि माँ का क्या होगा? पत्नी उन्हें पड़ोसियों के घर भेजना चाहती थी,लेकिन श्यामनाथ ने माँ से कहा कि- "जब मेहमान आ जाए तो तुम गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना। आज जल्द सो नहीं जाना। तुम्हारे खर्राटे की आवाज़ दूर तक जाती है।"[3] श्यामनाथ ने कभी भी यह नहीं सोचा कि वह आज जो कुछ भी है, अपनी माँ के कारण ही है। चीफ की दावत के कारण माँ उनके लिए फालतू सामान की तरह है। वह कूडे की तरह अपनी माँ को इधर से उधर छिपाना चाहता है। माँ भी इस व्यवहार का बुरा नहीं मानती । परंतु श्यामनाथ ने जिस चीज़ को इतना छिपाना चाहा आखिर वह उनके लिए हितकर ही बनता है ।

यह सच है कि आज के जीवन में अर्थ ही सब कुछ हो गया है। जो अधिक पैसे कमाते हैं उसी की सबसे ज्यादा इज्जत होती है परिवार में। श्यामनाथ अपनी माँ को गले लगा कर यह कहता है कि "अम्मी साहब तुमसे मिलकर कितने खुश हुआ कि क्या कहूँ"[4] श्यामनाथ की मनोदशा देखकर माँ कहती है- "बेटा तुम मुझे हरिद्वार भेज दो। मैं कब से कह रही हूँ।"[5] यह सुनकर श्यामनाथ नाराज़ होते- "तुम चली जाओगी तो फुलकारी कौन बनाएगा? साहब से तुम्हारे सामने ही फुलकारी देने का इकरार किया है।"[6] साहब खुश हुआ तो मुझे तरक्की मिलेगी। तरक्की सुनने पर मां की आंखें चमक उठती हैं और फुलकारी बनाने का वादा करती है-"मैं बना दूंगी, बेटा, जैसा बन पड़ेगा, बना दूंगी।"[7] माँ मन ही मन अपने बेटे के उज्ज्वल भविष्य की कामना करती है। माँ तो माँ ही है,वह अपने पुत्र द्वारा किए गए सारे अपमानजनक व्यवहार को भूल जाती है। क्योंकि बेटे की खुशी में ही वह अपनी खुशी देखती है।

प्रतिष्ठा और पद के लिए आदमी किस तरह मानवीय संबंधों को भुलाता है यही इस कहानी का संदेश है। स्वार्थ और लाभ के लिए संबंधों को नकारने वाले मध्यवर्गीय समाज की स्वार्थलोलुप प्रवृत्ति यहाँ स्पष्ट होती है। इस कहानी के संबंध में डॉ. नामवर सिंह का मत है- "एक समर्थ कहानीकार किस प्रकार जीवन की छोटी घटना में अर्थ के स्तर-स्तर उद्‌घाटित करता हुआ उसकी व्याप्ति को मानवीय सत्य तक पहुँचा देता है ऐसे अर्थगर्भत्व को मैं सार्थकता कहता हूँ।"[8]

जिन सामाजिक स्थितियों में भीष्म जी ने कहानियों का सृजन किया उसमें सामाजिक परिवर्तन से प्रेरित नवीन जीवन मूल्यों का चित्रण ही अधिक हुआ है। उनकी कहानियों में कस्बे का जीवन महत्वपूर्ण है जिसमें जाति और स्थानीय भावनाओं को कलात्मक अभिव्यक्तिमिली है । भीष्म साहनी की कहानी 'निशाचर' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इसमें रात के समय रद्दी बटोरनेवाली नारी का चित्रण है। मानवीय जीवन की विभीषिकाएँ जिन क्षणों में व्यक्त होती है उन क्षणों को व्यक्तकरने का प्रयास भीष्मजी ने इस कहानी में किया है।

आर्थिक विपन्नता के कारण स्त्री को जिन संघर्षों से गुज़रना पड़ता है, इसका मार्मिक चित्रण केसरो नामक कागज़ बटोरनेवाली स्त्री के माध्यम से किया गया है। गरीबी और लाचारी से जूझता हुआ हमारे देश में ऐसा वर्ग भी है जिसका जीवन रद्दी बटोरने के काम से होता है। केसरो हर दिन अंधेरे में ही रद्दी बटोरने निकलती है। खाली डिब्बे,बोतलें,उडते कागज आदि से केसरो अपना झोला भरती रहती है। कागज जो भी हो आठ आने किलो पर ही बिक जाता है। केसरो अपने साथ बेटी लछ्मी को भी ले जाती है। वह भी रद्दी बटोरती रहती है। इसमें अपनी माँ से ज्यादा फुर्तीली है। जितनी देर में उसकी माँ एक गली समाप्त करती है, बेटी उतनी ही देर में दो-दो गलियाँ पार कर जाती है। एक दिन रात की धुंध में दोनों रद्दी बटोरने निकलती हैं, तब बेटी ठंड से ठिठुर रही थी,फिर माँ ने उसे दूसरी गली में भेज दिया और खुद सड़क पर आकर काम में जुट गई ।

थोड़ी देर बाद केसरो उसी गली में गई जहां उसकी बेटी गई थी। वहां पहुंचने पर उसने देखा कि कोई बच्चा दर्द से कराह रहा है। घबराकर केसरो उसके पास पहुँचती तो देखा "सीढ़ियों पर उसकी बेटी औंधी पड़ी थी और हौले-हौले सिसक रही थी। कांपती, बेहोश-सी आवाज़ में उँ-उँ-उँ किए जा रही थी।"[9] सीढ़ियों के नीचे बेटी का थैला पड़ा हुआ था। देखता ही केसरो समझ गई कि बेटी ठंड खा गई है, उसे जूडी चढ़ी है। केसरो ने अपना थैला कंधे से उतार फेंका और बेटी के पास गई। वह उसके ऐंठे हुए हाथ को अपने हाथों में लेकर जोर-जोर से मसलने लगी और अपने मुंह में से अपनी गर्म सांस उसके मुंह पर डालने लगी। फिर भी उसका शरीर ऐंठ रहा था,उसमें कोई हरकत नहीं थी। खुद के केसरो के दांत भी बजने लगे थे। वह सोचती है "कब सूरज निकलेगा वह सूरज के ताप में बेटी के वदन को गर्माइश मिलेगी, इतना घना कोहरा कब छितरेगा, कब हवा की साँय-साँय बंद होगी, कब दिन के उजाले में उसका वतन सीधा होगा।"[10]

केसरो ने बेटी पर नज़र डाली तो उसका चेहरा

नीला पड़ गया था, उसको बिलकुल होश भी नहीं था। केसरो ने झट से उठकर बेटी का थैला खाली कर दिया और अपना थैला भी। रद्दी के ढेर में आग लगा दी। आग के शोले उठने लगे। रात का सन्नाटा बीत गया तो केसरो ने बेटी को देखा, उसके चेहरे पर रंगत आ गई थी। हाथ-पैर सीधे हो गए थे। अब वह ठिठुर नहीं रही थी बल्कि मीठी नींद में डूबती रही थी। राख के ढेर को देखकर केसरो अंदर ही अंदर छटपटा रही थी। वह तड़पकर उठ बैठी और कहने लगी "एक कागज नहीं बचा, सब जल गया। उठ कलमुंडी निकल मेरी गोद से। यहाँ सोने आई है? केसरो बिलखकर बेटी को उठाने लगी।"[11]

मनुष्य का जीवन आर्थिक समस्याओं के कारण इतना संवेदनहीन हो चुका है कि ठंड से ऐंठी हुई बेटी को होश में लाने के लिए उसे अपनी रद्दी बेकार में जलने का दुख अधिक है। आर्थिक दृष्टि से भी विवश रद्दी बटोरनेवाली स्त्री की यह करुण तथा मानवीय संबंधों की अर्थहीनता को सिद्ध करती है। अर्थ की महत्ता एवं भूख की समस्या किस अमानवीय स्तर पर पहुँच चुकी है इस कटु सत्य को उद्घाटित करती है 'निशाचर' कहानी।

बदलती समाजिक स्थितियों के कारण स्त्री-पुरुष संबन्धों में जो बदलाव आया है,उसका चित्रण भी भीष्म साहनी की कहानियों में हुआ है।

पारिवारिक विघटन की एक मार्मिक गाथा है- डोरे। जब एक नारी विवाहित पुरुष से प्रेम करती है तो वह इस बात की चिंता नहीं करती कि और किसी अन्य नारी पर अन्याय कर रही है।

अर्चना और गिरीश एक ही दफ्तर में काम करते हैं। अर्चना गिरीश से प्रेम करती है। वह यह जानती है कि गिरीश विवाहित है और उसके दो बच्चे भी हैं। वह आधुनिक और स्वतंत्र विचारों की नारी है। उसने गिरीश को अपने प्यार की डोर में बांध रखा था। "जिन डोरों से अर्चना उसके साथ बंधी थी, वे उसकी रुचियों के डोरे भी थे। वर्षों ही इन डोरों की लपेट में बीत गये थे और उनके साथ-साथ प्यार की कसमों के डोरे, एक साथ बिताई शामों के डोरे, भविष्य के मंजूबों के डोरे।.... अर्चना की जिंदगी अभी भी इन डोरों पर झूल रही है, उनकी जकड मानों और अधिक कसती जा रही है।"[12]

अर्चना विवाहित रहती है और नौकरी करके स्वतंत्र रूप से जीवन व्यतीत करना चाहती है। उसे इस बात का गर्व भी है कि किसी पुरुष को उसकी विवाह के बाद भी अपने आकर्षण में बांधने में वह समर्थ है और साफ-साफ अपने दफ्तर की सहेलियों से कहती है कि "मर्द को काबू में रखने का ढंग आना चाहिए। वह तो मेरे इशारों पर नाचता है, जो कहती हूँ, करता है।"[13] अर्चना और गिरीश शादी से पहले ही एक-दूसरे को चाहते थे, लेकिन घरवालों के दबाव के कारण गिरीश अर्चना से विवाहित नहीं कर सका। वह अपने पुराने प्रेमी को छाती से लगाता है। अर्चना यह जानती है कि जब गिरीश उससे मिलने आता है तब उसकी पत्नी घर पर उसका इंतजार करती रहती है। वह इतना ही सोचती है कि जिस के लिए मैंने उम्र भर शादी न करके ठान ली है उसे कैसे छोड़ दूँ। वह स्पष्ट कह देती है कि "उसकी पत्नी यदि उसे अपने प्रेम में बंधने में असमर्थ है तो यह उसकी कमज़ोरी है"[14]

गिरीश अपने बेटे बिट्टू के जन्मदिन जल्दी घर जाना चाहता है पर अर्चना उसे बातों में उलझाकर अपने घर ले जाती है और उसके साथ प्रेमालाप करती है। अर्चना सारी जिंदगी इसी तरह रहकर गुजारना चाहती है। वह अपनी सहेलियों से कहती है-"वह तो बिलकुल मेरा है। प्रेम तो वह मुझसे ही करता है। बिट्टू की मां तो केवल उसकी पत्नी है। वह तो केवल उसका घर चलाती है।"[15] उनकी राय में अग्नि की साक्षी,वेद-मंत्र,सिंदूर आदि सब आड़म्बर है। डॉ. ज्ञानवती अरोड़ा के अनुसार,"जीवन के निर्णय स्वयं लेनेवाली समसामायिक नारी प्रेम के साथ विवाह को आवश्यक नहीं मानती है। प्रेमी के पुत्र होने पर उसका जन्मदिन मनाती है।माता-पिता की दखलान्दाज़ी वह अपने जीवन में कहीं भी आवश्यक नहीं मानती है.....समय के प्रवाह में प्रेम उसके लिए आदत बन जाता है।"[16]

जब गिरीश के प्रमोशन का समय आता है तो अर्चना सोचती है कि कोई दूसरी औरत गिरीश को उससे छीन ले जाएगी और उसका जीवन अधर में लटक जाएगा। पर गिरीश प्रमोशन का अवसर खोना नहीं चाहता तो अर्चना सोचती है कि उसके लिए अपने जीवन के कई अवसर खो दिए हैं। कहानी के अंत में अर्चना को लगता है कि वह अब तक प्रेम के भ्रम में वेश्यावृत्ति ही करती थी । ऑफिस के बाहर गिरीश को मिलने भी बंद कर देती है।

भीष्म जी ने इस कहानी में अर्चना के माध्यम से आधुनिक और समसामायिक स्वतंत्र विचारों के नारी का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार मानवीय संबंधों को तलाशती भीष्म साहनी की कहानियाँ न केवल मनुष्य के जीवन सौंदर्य को स्पष्ट करती है बल्कि कुरूप होती जिंदगी को भी मानवीय धरातल पर अंकित करती है । अतीत और वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं का चित्रण करने वाला यह कहानीकार बीते हुए युग को वर्तमान से जोड़ना चाहते हैं ।यह ठीक है कि "वरिष्ठ कथाकार भीष्म साहनी की कहानियों में मानवीय मूल्य ही कहानी का आधार बनते हैं। .....ये कहानियाँ आज भी इसलिए प्रासंगिक है कि क्योंकि वे मनुष्य के जीवन सौन्दर्य का सतत तलाश में है।"[17]

संदर्भ सूची

1. सारिका, अप्रैल 1973 , पृ.3 3
2. अपूर्वानंद, समीक्षा वर्ष 25 अप्रैल जून,1991, पृ.9
3. भीष्म साहनी, चीफ की दावत, पृ.186
4. वही, पृ.22
5. वही.
6. वही.
7. वही. पृ.23
8. डॉ.नामवर सिंह, कहानी नई कहानी,पृ.33
9. भीष्म साहनी, निशाचर, पृ.66
10. वही. पृ.67
11. वही. पृ.69
12. भीष्म साहनी, डायन, प्रकाशकीय वक्तव्य से
13. भीष्म साहनी, पटरियाँ, पृ.152
14. वही. पृ.156
15. वही. पृ.157
16. ज्ञानवति अरोड़ा, समसामयिक हिंदी कहानी में बदलते पारिवारिक संबंध, पृ.239
17. भीष्म साहनी, डायन, प्रकाशकीय वक्तव्य से

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग

महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम।

Mail:dr.reenakumarisam@gmail.com

मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानियों में नारी-संवेदना

रिने मरिअम अब्रहाम

महिला लेखन ,स्त्री की आकांक्षाओं का दर्पण है। इसमें नारी जीवन सम्बन्धी सामाजिक सच्चाई और अस्मिता के संघर्ष की संवेदना विद्यमान है। नारी शिक्षा की वजह से भारतीय समाज में आये परिवर्तनों में प्रमुख है- नारी का स्वावलंबन और अस्तित्व की पहचान। इस परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह पुरुष के समान ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ रही है। सिर्फ घर के अन्दर काम करनेवाली नारी अब घर की चारदीवारी को छोड़कर पुरुष के साथ कंधे से कंधे मिलाकर आगे बढ़ने लगी है,लेकिन आगे बढ़ने के लिए उन्हें संघर्ष भी करना पड़ रहा है।

आज स्त्रियाँ हर क्षेत्र में मौजूद हैं इसी कारण नये-नये विषय, नये-नये वाद आदि को हम महिला लेखिकाओं की रचनाओं में पाते हैं। आज तक महिला लेखन मात्र स्त्रियों के जीवन से सम्बंधित था, जिनकी कथा दुख भरी थी। लेकिन आज महिला लेखिकाएें अपनी रचनाओं में अपने से बाहर निकलकर समाज में हो रहे कड़वे सच का चित्रण करने लगी हैं। समकालीन लेखिकाएें, भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, आधुनिकता जैसे नए-नए विषय पर भी अपनी लेखनी चला रही है। उनमें से विशेष नाम है-चित्रा मुदगल, प्रभा खेतान, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, मेहरुन्निसा परवेज़, मालती जोशी आदि।

समकालीन महिला कहानीकारों की रचनाओं में नारी जीवन से सम्बंधित विभिन्न पहलुओं को देख सकते हैं। जैसे-"पारिवारिककहानियाँ,सामाजिक कहानियाँ, राजनीतिक कहानियाँ,ऐतिहासिक कहानियाँ, मनोवैज्ञानिक कहानियाँ आदि। इन विषयों पर रचनाओं का सृजन करनेवाले प्रमुख महिला कहानीकार हैं - सुभद्रा कुमारी चौहान, कमला चौधरी, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, रामेश्वरी देवी, उषा मित्रा, मेहरु न्निसा परवेज़ आदि।

मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानियों में नारी - संवेदना : मेहरुन्निसा परवेज़ एक ऐसी व्यक्तित्त्व है जिन्होंने अपनी कहानियों में नारी दुर्दशा का चित्रण किया हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में कई सामाजिक सच्चाइयों को प्रस्तुत किया है जिनमें मध्यप्रदेश के बस्तर और आस-पास रहनेवाले लोगों की कठनाइयाँ और समस्याऐं मुख्य हैं। उनकी प्रमुख रचनाऐं हैं-'आँखों की दहलीज','उसका घर', 'कोरजा', 'समरांगण', आदि उपन्यास हैं। उनके कहानी-संग्रह हैं-'आदम और हव्वा','टहनियों पर धूप','गलत पुरुष', फाल्गुनी',' अंतिम चढ़ाई, 'अम्मा', ' समर', 'मेरी बस्तर की कहानियाँ' आदि।

मेहरु न्निसा परवेज़ की कहानियों में नारी -संवेदना का विविध रूप देख सकते हैं जैसे-पत्नी रूपी नारी, ईर्ष्यालु नारी,त्यागी रूपी नारी, वात्सल्यमयी माता रूपी नारी आदि। मेहरु न्निसा परवेज़ की कहानियों में मध्यवर्गी शिक्षित व कामकाजी स्त्रियों की समस्याऐं या उनकी विडम्बनाएँ देख सकते हैं। 'खाली आँखों की पीड़ा' में नौकरी करनेवाली महिला की समस्याओं का चित्रण हुआ है। आजकल कामकाजी, स्त्री पैसे कमाने का साधन मात्र हैं। नौकरी करके परिवार में पैसा देकर भी उसे वह सम्मान नहीं मिलता जो उसे मिलना चाहिए। उसे अपने परिवार ,पति,बच्चे, दफ्तर आदि से हमेशा संघर्ष करना पड़ता है। दफ्तर में बॉस की बुरी नज़रों से उन्हें बचना पड़ता है तो घर में अपने पति की शक की सुई चलती है। इन दोनों के बीच इस कहानी की नायिका उमा पिसती जा रही है। इस

प्रकार नौकरी करनेवाली विवाहित स्त्री की समस्याऐं विभिन्न है जिसका संवेदनात्मक चित्रण मेहरुन्निसा परवेज़ ने किया है।

'एक और सैलाब' तथा 'अयोध्या से वापसी' में त्यागमयी नारी का चित्रण हुआ है। इन दो कहानिओं से हमे पता चलता है कि - समाज में नारी पर बचपन से लेकर बुढ़ापे तक उसे समर्पण का पाठ पढ़ाया जाता है। वह बचपन में भाई - बहनों के लिए त्याग करती है। ब्याह के बाद पति के लिए तथा परिवार के लिए। 'एक और सैलाब' की नीलू अपने बच्चों के लिए त्याग करती है, क्योंकि उसके पति अस्पताल में भर्ती है। और नीलू अस्पताल का खर्च उठाने के लिए अपना सब कुछ बेच देती है। इसलिए वह अपने पति को नींद की गोलियाँ देकर मार देती है।अपने बच्चों के भविष्य के खातिर वह अपनी सुहाग को त्याग देती है।

'अयोध्या से वापसी' की नायिका नीरा का अपने पति राजेंद्र से बनती नहीं है। इसलिए वह अपने मायके चली जाती है। लेकिन वहाँ भी उसे अपमान सहना पडता है। निराश होकर वापस पति के पास लौटती है। इस मौके का फायदा उठाकर उसके पति फिर से छलता है तब नीरा अपने पति से कहती हैं - " मेरे बाप को बुरा-भला कहा तो ठीक नहीं होगा। तुम्हारे मन में मेरे लिए इतना ढेर सारा शक है यह आज पता चला। मुझे पहले ही पता था, यहाँ लौटने पर मुझे क्षण-क्षण अपमान ही मिलेगा पर बाबूजी के ,माँ के आगे मैं हार गई। ....सीता का भी अयोध्या लौटने पर अपमान हुआ था, पर इससे पहले कि राम की तरह अंधे होकर तुम मुझे निकालो मैं खुद तुम्हारी अयोध्या त्याग कर जा रही हूँ।" [1]

पारिवारिक जीवन में तनाव और घुटन झेलती नारी का चित्रण 'अपने अपने दायरे' में देख सकते हैं। माया के माता -पिता आपसी तनाव में बंधे हैं। उसका पिता कभी अपनी पत्नी यानी माया की माँ के साथ बैठकर खाना भी नहीं खाता। अपनी पत्नी की साड़ी फटने पर भी एक नई साड़ी खरीदकर नहीं देता। उसकी ओर ध्यान ही नहीं देता। वह अपने घर की आया के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाये रखता है और उसे हमेशा तोफा भी खरीदकर देता है। लेखिन माया की माँ यह सब जानते हुए भी अपने पति से कुछ नहीं कहती सब कुछ जानकर भी चुप है। यह सब माया देखकर सोचती हैं - " एक ही मोह में बंधे हुए, एक ही वेदना में तड़पते हुए पर ..... पर थोड़ी देर के बाद यह दोनों अलग हो जायेंगे। ..... अपनी-अपनी सीमा में, अपने- अपने दायरे में , जो कभी नहीं टूटेगा।"[2]

'सीढ़ियों का ठेका' कहानी में मेहरुन्निसा परवेज़ जी ने ईर्ष्यालू नारी का चित्रण किया है। हम सब सुनते आए है कि नारी ही नारी की दुश्मन होती है, क्योंकि नारी ईर्ष्यालू होती है। एक नारी, दूसरी नारी की भावनाओं को न समझकर उसकी भावनाओं के साथ खेलती है। जब वह बहु थी तब उसकी सास के अन्याय को झेलती थी और वही बहु जब सास बनी तो वह भी अपनी बहु के साथ वैसा ही पेश आती है जैसे उसकी सास उससे पेश आती थी। इसका कारण ईर्ष्या है। इस कहानी में करीम नाम का एक व्यक्ति अपनी बीवी, बच्चों के साथ रहता है। जब वह काम पर चला जाता है तब उसकी पत्नी अपनी सास करीमन पर अत्याचार करती हैं ,खाना भी नहीं देती। करीमन मज़बूर होकर भीख माँगने का काम करती है और अपने बेटे को उसका पता नहीं चलने देती। इस भीख से मिलनेवाली पैसे को बचाकर अपनी बहु के हाथ देती है। एक दिन बहु खाना देती है, तो दूसरे दिन घर से बाहर का रास्ता दिखाती है और करीमन दूसरे दिन बस्ती में भीख माँगने लगती है। इस तरह के पारिवारिक जीवन की विडम्बनाओं का उन्होंने तन्मयता से अभिव्यक्त किया है।

कविता

संग समय के साथ चल

श्रीनिधी शिवदासन

मैंने देखा है उसको भागते हुए
आज तक न देखा है किसी को
इतनी तेजी से भागते हुए!
घर, स्कूल, दफ्तर, सड़क,
भीड़ वाली बाज़ार से सुनसान जगह तक
मैंने देखा है उसको भागते हुए।

किससे भाग रहा है? कहाँ जा रहा है?
रोककर पूछने का प्रयोस तो किया
मग हर बार हार ही हार मिला।
पर हाँ 'समय' नाम है उसका
यह तो पता लगा लिया।

इस दौड़ में उसे न कोई जीता है
बल्कि हर बार पानी ही पानी पीता है।

समय भाग रहा है, न कर रहा किसी का इंतजार
जीवन घट रहा है, याद कराता है बार-बार
"हे समय, मुझसे चला नहीं जाता, रुक जाओ एक पल"
"मैंने रुकता किसी के लिए, रुका तो मचेगी हल-चल,
अगर चलना है तो संग समय के साथ चल"

'गीतश्री', 14/232 A
कल्लडीपोट्टा.पी.ओ,
पट्टांबी, पालक्काड

'चमड़े का खोल' नामक कहानी में वात्स्ल्यमयी माता का रूप है। शुभा के पिता उसकी माँ को छोड़कर दूसरी औरत के साथ रहता है। उसके पिता अपनी पत्नी और बच्चों को अपनाने के लिए तैयार नहीं है। शुभा जब कभी मायके आती है तो उससे मिलने के लिए अपने पिता नहीं आते। किन्तु शुभा की माँ अपने बच्चों के प्रति वात्सल्यमयी हैं। माँ का वात्सल्य और प्यार परिवार के एक दूसरे को जोड़ रखती हैं। परिवार की खुशी में ही उसकी खुशी है और उनके दुख में उसका दुख।

निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित होगा कि समकालीन महिला लेखन में मेहरुन्निसा परवेज़ एक प्रमुख हस्ताक्षर है जो कई पुरस्कारों और पद्मश्री से सम्मानित हैं। उनकी रचनाओं से नारी जीवन की सच्चाई प्रत्यक्ष होती है। उन्होंने कई साहित्य विधाओं में अपनी कलम चलाई है और अपने साहित्य में ज्यादातर नारी की संवेदना को दर्शाया है। उन्होंने अपनी रचनाओं का केंद्र सिर्फ नारी जीवन तक सीमित न रखकर आदिवासी जीवन की समस्याओं, मुस्लिम वर्ग की समस्याओं, वृद्धजीवन की विडम्बनाओं, पारिवारिक जीवन की संवेदनाओं को भी अपने लेखन का विषय बनाया हैं। उनकी रचनाओं में ऐसा कोई विषय नहीं है जिस पर उन्होंने अपनी कलम न चलाई हो।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मेहरुन्निसा परवेज़–'मेरी बस्तर की कहानियाँ' पृ .65
2. मेहरुन्निसा परवेज़-अयोध्या से वापसी पृ .73

शोधार्थी
सेंट थोमस कॉलेज , पाला

दलित साहित्य : अवधारणा एवं अनुशीलन

दिव्या.एम.एस

हिंदी में दलित साहित्य एक ऐसी सच्चाई को लेकर उभरा जो भोगा हुआ सत्य है वह सत्य पाठक के हृदय को छू गया है दलित साहित्य न मनोरंजन के लिए है न परंपरागत रूप में शिक्षा देने वाला। यह उन लोगों के जीवन की सच्चाई है जिन्होंने हजारों वर्षों से घृणा,अपमान, पीड़ा, उपेक्षा आदि को सहा था। हिंदी साहित्य में दलित साहित्य पीड़ित एवं अछूत से संबंधित के रूप में अभिहित हुआ है। यह साहित्य मानव को मानव रूप में प्रतिष्ठित करते हुए देखना चाहता है। दलित साहित्य के केंद्र में मानव जीवन का यथार्थ दृष्टिगोचर है। डॉक्टर जयप्रकाश कर्दम कहते हैं कि "दलित साहित्य के केंद्र में मनुष्य है। इसमें सर्वत्र मनुष्य का दुख उसकी पीड़ा उसका संघर्ष और उसकी विजय अभिव्यक्त होती है। दलित साहित्य में मानवीय समता स्वतंत्रता और न्याय पर बल है। दलित साहित्य का सारा संघर्ष इन्हीं के लिए है।"[1] वह सदियों से सताए गए मनुष्य को अपने अस्तित्व का अहसास करता है और उसे अपने अधिकारों से परिचित करा के अस्मिता युक्त जीवन जीने का संदेश देता है।

दलित साहित्य-आंदोलन मराठी में सन 1960 के बाद शुरू हुआ। दलित साहित्य आंदोलन की अवधारणा का उदय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान शुरू हुआ। ज्योतिबा फुले ,रानाडे ,रामस्वामी पेरियार तथा डॉक्टर अंबेडकर ने इस आंदोलन के माध्यम से वर्ण व्यवस्था,जाति प्रथा,अछूत समस्या,जातिवाद, सांप्रदायिकता गैर ब्राह्मणों के अधिकारों की लड़ाई आदि को उत्तेजित किया। राजनीतिक चेतना द्वारा लोक जागरण को बढ़ाया। आर्थिक व्यवस्था के विकास के पहले सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था में सुधार लाना दलितों की जरूरी है।

अंबेडकर की प्रेरणा शक्ति के सहारे भारतीय दलित साहित्य ने नयेपन के साथ भारतीय साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण किया। दलित लेखिका सुशीला टाकभौरेजी की राय में-'दलित साहित्य-सृजन अंबेडकरवादी आंदोलन का माध्यम है। दलित साहित्य साध्य नहीं,साधन है,जिसका लक्ष्य अंबेडकरवादी विचारधारा के अनरूप दलित पिछडों को समता सम्मान का अधिकारी होने की प्रेरणा व विश्वास देना है ,उन्हें प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करना है"[2] कन्नड़, तेलुगू,मलयालम,मराठी ,गुजराती, पंजाबी,राजस्थानी, बंगला आदि भारतीय भाषाओं में भारतीय जनता दलित साहित्य को स्वीकार ही नहीं किया बल्कि दलित साहित्य से प्रभावित होकर दलितों के अधिकारों के प्रति अपनी सहमति भी दी।

ओमप्रकाश वाल्मीकि,मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, विपिन बिहारी, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, दयानंद बटोही ,कालीचरण स्नेही, सूरजपाल चौहान, शयैराज सिंह बेचैन ,सुशीला टाकभौरे , प्रहलाद, चन्द्रदास,प्रेम कपाडयिा,रत्न कुमार सांभरिया, नीरा परमार, कावेरी, सीबी भारती, बी एल नायर, कुसुम वि योगी, कुसुम मेघवाल,सत्य प्रकाश,डॉक्टर रजत रानी मीनू, चंद्रभानु प्रसाद, बुद्ध शरणहंस, पुष्पा भारती, प्रेमलता, जैन आदि अनेक दलित कहानीकारों ने दलित कहानी साहित्य में अपना-अपना योगदान दिया है।

दलित साहित्यकारों की कहानियाँ सीधे-सीधे अनेक परिवेश एवं संस्कारों से जुड़कर अभिव्यक्ति पाती हैं, क्योंकि दलित साहित्य कथा आंदोलन का अपना सामाजिक सरोकारों से जुड़ा एक सुदृढ़ आधार है। 'सुशीला जी की राय में दलित साहित्य सौंदर्य बोध या मनोरंजन का साहित्य नहीं, बल्कि दलित पीड़ित शोषित वर्ग की वेदना- संवेदना का साहित्य है। यह कल्पना पर निर्मित नहीं, बल्कि समाज की सच्चाई के रूप में सच्ची घटनाओं पर निर्मित है। स्वानुभूति याने अपनी स्वयं की अनुभूतियां और प्रामाणिकता याने जो सच हो ,प्रामाणिक हो"[3] जबकि गैर-दलित साहित्यकार पाखंड का सनातनी दुशाला भी ओढे हुए होते हैं। गैर-दलितों की सहानुभूति से दलितों की

सामाजिक स्थिति में कोई बदलाव नहीं आता और न ही उनमें प्रतिरोध की भावना ही उत्पन्न होती है। दलित समाज सहानुभूति की इच्छा के विपरीत समानता और बंधुत्व का दर्जा चाहता है। "गैर-दलित कहानी की कथावस्तु, पात्र, वार्तालाप, वातावरण और कहानी का उद्देश्य दलित कहानी से अलग होते हैं। भाषा और शिल्प में भी अंतर रहता है।"[4]

दलित साहित्य का मूल उद्देश्य न्याय के पक्ष में और अन्याय के विरु द्ध आवाज़ उठाना है, दलित समाज की वास्तविकता का परिचय कराना है। साथ ही ब्राह्मणवादी चेतना के विरुद्ध दलित चेतना का प्रचार, जातिवादी भेदभाव मिटाना और जीवन में परिवर्तन का संकल्प बनाए रखना है।

हिंदी दलित कहानियां भावप्रधान, घटना प्रधान , चरित्र प्रधान, वातावरण प्रधान आदि है। दलित कहानियां कल्पना को कम और सच्चाई को अधिक महत्व देती है। हिंदी दलित साहित्य में कहानियों का अपना विशेष स्थान है। हिंदी दलित कहानी का संसार बीसवीं शताब्दी के आठवीं दशक में विस्तृत हुआ। संपादक राजेंद्र यादव की पत्रिका 'हंस' में दलित कहानियों का प्रकाशन विशेष रहा।

हिंदी कहानियों में गरीब, लाचार, अछूत, अन्याय आदि दलित समस्याओं को अपनी कहानियों में प्रस्तुत करने वाले सर्वप्रथम कहानीकार प्रेमचंद है। दलित चेतना की उत्कृष्ट कहानी है - 'ठाकुर का कुआँ'। रू ढ़िवाद और दलितों के प्रति हो रहे अन्याय के विरुद्ध लोगों में चेतना जागृत करने वाली रचनायें हैं - दूध का दाम, सद्गति, मंदिर, मंत्र, घाटवासी तथा बाबा का भोगा आदि। हिंदी दलित कहानियों में डॉक्टर अंबेडकर की विचारधारा को सरल एवं सहज रूप से अपनाते हुए अपनी कहानियों के माध्यम से दलित समाज की दुर्दशा को दर्शाया जाता है। 'दलित चेतना अंबेडकर वादी विचारधारा से शुरू होती है। उसका चरमोत्कर्ष भी अंबेडकरवादी विचारधारा में ही है। डॉक्टर अंबेडकर ने सही मायने में दलितों की स्थिति को समझा और उस स्थिति को बदलने के लिए जीवन भर प्रयत्न व संघर्ष किया था।"[5] वर्ण व्यवस्था, जातिप्रथा, अछूत समस्या, ब्राह्मणवाद आदि के विरुद्ध तथा दलित शिक्षा, सम्मान, अधिकार, एकता, संघर्ष आदि बिंदुओं पर प्रकाश डालते हुए दलित पत्रों को कहानियों में प्रगतिशील मार्ग पर चलते प्रस्तुत किया है।

दलित साहित्य का एकमात्र लक्ष्य साहित्य और समाज में समानता, स्वतंत्रता आदि मूल्यों की स्थापना करना है। दलित साहित्य लेखन एक साहित्यिक आंदोलन मात्र नहीं है और न ही इसका उद्देश्य हिंदी साहित्य की दुनिया में अपने लिए जगह बनाना है बल्कि दलितों के जीवन यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए जाति व्यवस्था के अंत के साथ पूरे भारतीय समाज की मुक्ति चाहता है।

दलित साहित्य कमज़ोर वर्गों के संरक्षण की बात करता है। महिलाओं के समान हकों की बात करता है। सामाजिक सुधार और धार्मिक खुलेपन की बात करता है। दलित साहित्य वह है,जो इंसान को इंसान समझता है। दलित साहित्य मानवीय मूल्यों, आज़ादी, समानता, बंधुत्व एवं न्याय पर आधारित जाति एवं वर्ग रहित समाज के सृजन की बात करता है। निश्चित रू प से ऐसे साहित्य के बगैर राष्ट्र निर्माण की बात खोखली होगी।

दलित साहित्य का संदेश यही है कि दुनिया में मनुष्य सर्वोपरि है। समाज में सब मनुष्य समान है। सबको समान मानवीय अधिकारों के साथ जीने का अधिकार है। दलित भी दूसरों की तरह मनुष्य है तथा उनको भी समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक सम्मान और स्वाभिमान के साथ जीने का अधिकार है। उनको भी आगे बढ़ने और प्रगति करने के समान अवसर उपलब्ध होना चाहिए। समाज में समानता, स्वतंत्रता, न्याय और नैतिकता के इन मानवीय मूल्यों की स्थापना ही दलित साहित्य का लक्ष्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉक्टर जयप्रकाश कर्दम-मेरे संवाद (साक्षात्कार)-पृ:सं:57
2. सुशीला टाकभौरेजी- मेरे साक्षात्कार - पृ : सं : 79
3. सुशीला टाकभौरेजी- मेरे साक्षात्कार-पृ : सं : 81
4. सुशीला टाकभौरेजी - मेरे साक्षात्कार-पृ : सं : 80
5. सुशीला टाकभौरेजी - मेरे साक्षात्कार-पृ : सं : 80

शोधार्थी, हिंदी विभाग, यूनिवर्सिटी कॉलेज, पालयम तिरुवनंतपुरम। Mob: 8848023408, divujith@gmail.com

समकालीनता को पुनर्भाषित करती मंडलोई जी की कविताएँ

केसरबेन राजपुरोहित

कविता वस्तुवादिता-विषयवादिता का अतिक्रमण करती हुई जीवन के उन सार्वभौमिक सत्यों-रहस्यों की राहें तलाशती-दर्शाती है, या उन पर अग्रसर होने की प्रेरणा जगाती है, जिनमें जिंदगी जीने की, जिजीविषा की और आनंद-आत्मोन्नयन की उर्जा होती है।[1] समकालीन कविता में अपने समय की संवेदनाओं का चित्रण है जिसमें वर्तमान परिस्थितियों के ब्यौरे के साथ भविष्य के संकेत भी मिलते हैं। आज आधुनिकता की दौड़ में व्यक्ति स्वयं को ही भूलता जा रहा है। एक-दूसरे के प्रति द्वेष की भावना, ईर्ष्या, नफरत, अहंकार जैसे विकारों से घिरे वर्तमान मनुष्य से शांति या संतोष की उम्मीद कैसे की जा सकती हैँ आज प्रगति करने के कई रास्ते हैं, कई संभावनाऐं हैं लेकिन लीक से हटना भी ज़रुरी है जो हर किसी के लिए सरल नहीं। समकालीन हिंदी कविता में लीलाधर मंडलोई जी एक ऐसा ही जगमगता सितारा है जिन्होंने दूसरों की बनाई परिपाटी से हटकर कुछ नये तरीके से अपने विचारों को प्रस्तुत किया। एक समय था जब लंबी कविताऐं लिखना फैशन बन गया था। हर कोई लंबी कविताओं की रचना में व्यस्त थे। ऐसे समय में मंडलोई जी ने धारा के विपरीत जाकर छोटी कविताऐं लिखीं और उन्हें प्रकाशित भी करवाया। इन छोटी कविताऐं उनके 'लिखे में दुक्ख' नामक काव्यसंग्रह में संगृहित हैं।यह एक साहस हैजब आप चलती हुई परिपाटी से विपरीत कुछ नया करने की ठान लेते हैं।

अपनी कविता के द्वारा आप करना और कहना क्या चाहते हैं यह बात अति महत्वपूर्ण है। इस लिहाज़ से देखें तो मंडलोई जी की कविताएँ हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। मंडलोई जी की कविताओं में उनके गहरे जीवनानुभव के साथ स्मृतियाँ, मन को उद्वेलित करता अवसाद, संयमित आक्रोश और बैचेनी का अद्भुत मिश्रण है। मंडलोई जी आत्मव्यंग्य भी करते हैं। आत्मकथ्य के साथ परकथन का चित्रण भी मंडलोई जी ने अपनी कविताओं में बखूबी किया है।कवि अपने दुख को सबके साथ जोड़ना चाहते हैं और इसे परखने के लिए मंडलोई जी कहते हैं कि उनकी लिखी कविताओं से अगर सबकी संवेदनाएँ उद्वेलित न हो, अपना ही दुःख महसूस न हो तो उनके लिखे को आग लगे- "मेरे लिखे में /अगर दुःख है / और सबका नहीं/मेरे लिखे को आग लगे"[2]

मंत्र कविता में मंडलोई जी मधुमक्खियों की परिश्रमशीलता और कर्तव्यनिष्ठा का बखान करते हैं। मधुमक्खियाँ बड़ी ही मेहनत से एक-एक फूल से पराग,(फूलों के केसरों पर जमी हुई धूल, रजकण) और मकरंद (पुष्परस) को इकट्ठा कर शहद तैयार करती है। बाहरी आक्रमण से उस शहद की रक्षा भी करती है।

"मधुमक्खियाँ तैयार/करती हैं शहद/और करती हैं रक्षा/बाहरी आक्रमण से उसकी/घिरे हुए हैं हम अनेक दुश्मनों से/और रक्षा नहीं कर पाते/हमने मधुमक्खियों से सीखा नहीं यह मंत्र"[3]

कवि का कहना है कि वर्तमान समय में व्यक्ति कई बाहरी विषादों से घिरा हुआ है। 'बनावटी शिष्टाचार के साथ मार्ग को भूलकर लक्ष्य को साधना वै ीकरण का एक चेहरा है। इसमें सिर्फ अर्थ प्रमुख है, मगर

जीवन का अर्थ नहीं।'[4] इसी कारण व्यक्ति अपनी समस्याओं को सुलझाने में परिस्थतियोंवश स्वयं को असमर्थ पाता है। बाहरी परिस्थितियों का सामना करने के लिए भीतरी विकारों पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष जैसे कई विकार हमें अंदर से खोखला बनाते हैं। अगर इन भीतरी विकारों पर विजय प्राप्त कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए परिश्रम करते रहे तो जीवन में सुख-संतोष और सफलता की लहर का आगमन निश्चित है।

कोमलता नामक छोटी सी कविता में कवि ने जीवन संघर्षो से झूझनेवाले और किसी भी परिस्थिति में सहर्ष जीनेवाले मनुष्य का चित्रण किया है-

"जिनका सिरहाना/ताउम्र/पत्थर रहा हो/उन्हें तकिए पर नींद/नहीं आती/पत्थर की कोमलता/हर कोई नहीं जानता"[5]

जो व्यक्ति जीवन की कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने कर्तव्यपथ पर बढ़ते हैं उनके लिए ऐशो-आराम कोई मायने नहीं रखते। जोखिमों का डटकर सामना करनेवाले, प्रतिरोधों को झेलनेवाले,अपने ही आक्रोशों से लडनेवाले व्यक्ति के लिए आराम की जिंदगी कोई अहमियत नहीं रखती। ऐसे व्यक्ति नई चुनौतियों का दृढ़तापूर्वक सामना करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। अर्थात् अधिकांशतः श्रम में इतने डूबे होते हैं कि अभाव अथवा विषमता के विषय में सोचने का अवकाश हीं उन्हें प्राप्त नहीं है।[6]

डरता है कविता में स्वाभिमानी व्यक्तिके चरित्र पर प्रकाश डालते हुए कवि कहते हैं-

"जिनको नहीं चाहिए अधिक/बहुत है दो जून की रोटी/और गाने की छूट/बुहार सकते हैं जो/आसमान और धरती/डरता है उनसे खुदा भी"[7]

जो व्यक्ति गलत का विरोध कर सके वही सच्चा स्वाभिमानी है। ऐसे व्यक्तिके लिए पद या ओहदे मायने नहीं रखते। वह बिना डरे गलत का प्रतिरोध करने के लिए तत्पर रहता है। ऐसे व्यक्तिछल-कपट से कोसो दूर रहते हैं। मेहनत, ईमानदारी और स्वाभिमान से जो प्राप्त होता है उसमे आत्मसंतोष का फल होता है जो व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाता हैं।ऐसे लोग अपने आत्मविश्वास के सहारे दुनिया को जीतने की क्षमता रखते हैं। इसीलिए मंडलोई जी कहते हैं कि जो व्यक्ति अपना स्वाभिमान गिरवी रखकर कुछ नहीं पाना चाहते अर्थात् जो ईमानदारी से सही रास्ते पर चलते हैं और दृढ परिश्रमकरते हुएलक्ष्य की ओर बढ़ते है खुदा भी उनका साथ अवश्य देता है।

चींटियाँ कविता के माध्यम से कवि ने आज बढ़ते पूँजीवाद पर करारा व्यंग्य किया है। उपनिवेशवादी दौर का प्रतिरोध और धर्मिता के नये तेवर को उजागर करते हुए कवि कहते हैं-

"जैसे बनाती हैं सड़कें/पानी को पार करती हैं एकजुट/पहाड़ों पर चढ़ती हैं/युद्ध करती हैं अपनी सेना के साथ/अनाधिकार घुसने नहीं देती/किसी को अपने इलाकों में/कर सकती है चींटियाँ जैसा/कर सकते हैं हम भी/देखो अमरिका घुसा आ रहा है जबरन"[8]

चींटियाँ सदा साथ मिलकर कार्य करती हैं। किसी भी मुसीबत का सामना सदा एकजुट होकर करती हैं। अपने इलाके में किसी को भी अनाधिकार घुसने तक नहीं देती। लेकिन आज मनुष्य जाति, धर्म, भाषा और समाज के नाम पर टुकडों में बंट रहे हैं। साथ मिलकर रहना तो दूर की बात है।हर कोई सिर्फ अपने स्वार्थो को सिद्ध करने में लगा हैं। दूसरों की नकल करने में

सुख ढूँढ रहे हैं। इसी अंधाधुंध दौड में अपने सांस्कृतिक मूल्यों को भी खोते जा रहे हैं।विकास के लिए आवश्यक है कि आप पश्चिम की अच्छी बातों का अनुकरण करें लेकिन आज अनुकरण से हम जो भी ग्रहण कर रहे हैं वह कहाँ तक सही हैं अपनी अस्मिता को बनाए रखना बहुत बडी बात है। उसीमें अच्छी बातों को आत्मसात करना उससे भी बडी बात है।लेकिन दूसरों की सही-गलत बातों को बिना सोचे-समझे अपने रहन-सहन में उतार देना, अपने सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति सचेत न रहना कहाँ की अक्लमंदी हो आज मानवीय संवेदनाओं मे हेरफेर हो रही हैं। साथ ही जनता के दिल में अलगाववाद, अकेलापन, संवेदनहीनता फैलने लगे हैं। आत्मीयता, ममता, भाईचारा, क्षमा, दया, करुणा, सहिष्णुता, समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व जैसे मानवीय गुणों एवं मूल्यों का मुनाफेखोर समाज में स्थान नहीं रहा है।"[9]

वर्तमान समय में खोखले मनोरंजन को बढ़ावा दिया जा रहा है। मनोरंजन के नाम पर सही-गलत का विचार किए बिना ही आनंद का उपभोग करने की मानसिकता घर कर रही है। हर कोई सिर्फ खुद में मस्त है। चमत्कार कविता में नटिनी के उदाहरण द्वारा कवि कहते हैं-

"नटिनी के पाँवों में चमत्कार है/लोग उसका/ चलना नहीं/फिसलना देखना चाहते हैं"[10]

'नटिनी' जब करतब दिखाती है तो लोग उसके पाँवों का चमत्कार देखकर उसकी तारीफ नहीं करना चाहते। बल्कि वे उसके फिसलने का इंतज़ार करते हैं। अर्थात् वर्तमान युग में किसी के पास समय नहीं है कि दो पल का सहारा देकर किसी की मदद करदे। कहीं न कहीं सबकी विचारधारा ऐसी बनती जा रही है कि किसी को गिराने में ही उन्हें आनंद प्राप्त हो सकता है, वही उनका मनोरंजन है। मनुष्य आधुनिकता के नाम पर संवेदनाहीन होता जा रहा है। सभी व्यस्त है अपनी भाग-दौड भरी जिंदगी में। भीड खडी होकर तमाशा ज़रूर देखेगी। तब लोगों के पास काफी समय होगा क्योंकि वहाँ उनका मनोरंजन जो हो रहा है। वर्तमान समय में लोगों की स्वार्थपरता पर गंभीर चिंतन किया गया है।

ढब कविता में जिंदगी जीने के तौर-तरीके पर कवि कहते है कि-

"अकाल हो/आतंक या महामारी/जिंदगी/अपने जीने का ढब/ ढूँढ लेती है[11]

जीवन जीने के लिये कोई भी आकर्षण शेष न रहने पर भी आम आदमी जीना चाहता है और इसके लिये वह संघर्षरत है। वह घोर अभावों एवं पीडाओं के मध्य भी कोई न कोई सुखद क्षण तलाशता है, जिनके सहारे जी सके। यह उसकी स्वाभाविक मनोदशा है।[12]

जीवन में चाहे कितनी ही कठिन परिस्थितियाँ हो उनके अनुसार हम जीना सीख ही जाते हैं। प्रकृति हमें परिस्थितियों के साथ अनुकूलन करने में सहायता करती है। चारों तरफ जोखिम, महामारी, अकाल या आतंक के होने पर भी अगर कभी हार न मानने का हौसला रखते हैं तो कोई न कोई रास्ता मिल ही जाता है। शर्त है कि परिस्थतियों से कमज़ोर होकर स्वयं हार न मान ले। क्योंकि जो स्वयं अपने मन से ही हार मान लेता है उसे कोई और जीत नहीं दिला सकता।

जीवन में मकसद का होना आवश्यक है।मकसद के महत्व को रेखांकित करते हुए मकसद कविता में कवि कहते हैं-

“चक्रव्यूह में घिरने पर
मक़सद के सिवाय
कुछ और याद नहीं रहता
कोई भी मृत्यु अकारथ नहीं[13]

जीवन में कभी ऐसे मोड भी आते हैं जब मक़सद को पूरा करना ही एक मात्र लक्ष्य बन जाता है। यह भी कह सकते हैं कि मक़सद को पाने की कशिश आपको अपने लक्ष्य तक पहुँचा ही देती है। जीवन रूपी चक्रव्यूह में घिरने पर भी अगर हमारा ध्यान अर्जुन की तरह केवल पक्षी की आँख पर होगा तब एकाग्रता और मेहनतरूपी तीर से उसे भेदकर लक्ष्य की प्राप्ति ज़रूर होगी। ज़रूरत है लक्ष्य को कभी न भूलने की उसे हमेशा आँखो के सामने रखकर प्रयास करते रहने की।

कवि जीवन में आनेवाली परेशानियों से न डरने की बात करते हुए नुस्खा कविता में कहते हैं-

“दुःख से प्यार करो
जीत होगी
इसमें छिपा है
लड़ने का अमर नुस्खा”[14]

कवि के अनुसार दुःखों से डरो मत, उनसे भागो मत बल्कि उनसे प्यार करो तब आपकी जीत निश्चित है। दुःखों से हार कर हताश होकर बैठ जाने से मंजिल नही मिलती। मंजिल को पाने के लिए उसे प्रयत्न रूपी पानी से सींचना पड़ता है। जिस चीज से प्यार हो उससे डरने की आवश्यकता नहीं होती। उसे तो सदा साथ रखने की उम्मीद होती है। इस प्रकार डर पर जीत हासिल की जा सकती है और मुश्किल लगनेवाली हर राह आसान हो जाती है। जब किसी बात का डर ही न हो, कोई दुख-विषाद न हो तो बड़े से बड़ी लडाई सहजता से जीती जा सकती है।सच यह भी है कि संघर्ष शक्ति के बिना नहीं हो सकता।[15]

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. डॉ.जीवन प्रकाश जोशी, कविता की पहचान, पृ. 44
2. लीलाधर मंडलोई, लिखे में दुक्ख, पृ. 92
3. लीलाधर मंडलोई, लिखे में दुक्ख, पृ. 14
4. डॉ. प्रमोद कोव्वप्रत, समकालीन हिंदी कविता का तापमान, पृ. 17
5. लीलाधर मंडलोई, लिखे में दुक्ख, पृ. 17
6. मृदुल जोशी, समकालीन हिंदी कविता में आम आदमी, पृ. 64
7. लीलाधर मंडलोई, लिखे में दुक्ख, पृ. 23
8. लीलाधर मंडलोई, लिखे में दुक्ख, पृ. 31
9. डॉ. प्रमोद कोव्वप्रत, समकालीन हिंदी कविता का तापमान, पृ. 50
10. लीलाधर मंडलोई, लिखे में दुक्ख, पृ. 43
11. लीलाधर मंडलोई, लिखे में दुक्ख, पृ. 49
12. मृदुल जोशी, समकालीन हिंदी कविता में आम आदमी, पृ. 199
13. लीलाधर मंडलोई, लिखे में दुक्ख, पृ. 62
14. लीलाधर मंडलोई, लिखे में दुक्ख, पृ. 95
15. डॉ. जीवन प्रकाश जोशी, कविता की पहचान, पृ. 39

अतिथि व्याख्याता,
कालीकट विश्वविद्यालय,
मो. 9207433926
ई मेल- kesarclt@gmail.com

'पहला पडाव' उपन्यास में सामाजिक पक्ष की अभिव्यक्ति

डॉ. प्रियाराणी.पी.एस

स्वतंत्रयोत्तर अस्थिर और गतिशील समाज की मानसिकता को हिंदी उपन्यासों में तीव्रता से उजागर करने वाले उपन्सयास्कारों में श्रीलाल शुक्ल जी का नाम शीर्षस्थ है। वे किसी विशिष्ट विचारधारा से प्रतिबद्ध नहीं थे। उनके उपन्यास साहित्य में आम आदमी की त्रासदी, विवशता, असहायता, निर्धनता, अभावग्रस्तता का करुण पक्ष सफल रूप से उद्‌घाटित हुआ है। अपने साहित्य में अनेक समस्याओं का चित्रण करते हुए कई समस्याओं का समाधान देने का प्रयास किया है। पहला पड़ाव उपन्यास में वर्ग संघर्ष, आर्थिक समस्या, प्रेम और आर्थिक का संबद्ध, नारी शोषण, पारिवारिक जीवन, विधवा विवाह, मज़दूर संगठन, बाल मज़दूरों का शोषण आदि समस्याओं को प्रस्तुत किया है।

श्रीलाल शुक्ल जी वर्तमान-समस्याएँ भाव बोध, परिवेशगत अनुभूति और संवेदना आदि को लेकर साहित्य रचना करने वाला महत्वपूर्ण साहित्यकार थे। 'पहला पडाव' उपन्यास में परिवेश गत अमानवीयता की सही पहचान मिलती है। इस में तत्कालीन भारत के प्रशासनिक और राजनीतिक यथार्थ का चित्रण है। इस में शुल्क जी ने राज मजदूरों एवं शिक्षित बोरोजगारों के जीवन संघर्ष का परिचय दिया है। इन के माध्यम से शुक्ल जी ने हमें समाज की आर्थिक अंतर्विरोध तथा उन्हें परिचालित करनेवाली शक्तिर्यों से परिचित कराया है।

'पहला पड़ाव' में लेखक ने परमात्मा स्वरूप के भवन के निर्माण कार्य में लगे मज़दूरों के माध्यम से समकालीन भारत में मज़दूर आंदोलन के स्वरूप को अभिव्यंजित किया है। परमात्मा स्वरू प के विशाल भवन के निर्माण कार्य में लगे हुए मज़दूर उत्तरप्रदेश के बिलासपुर और मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ से आए हुए है। मज़दूर किशोरियाँ ज्यादातर भट्ठा और ईंटों का काम करते है, या मकान बना रही है। मज़दूरों के दलाल उन्हें एडवांस देकर वहाँ ले आते है। पूरे खानदान के खानदान मज़दूरी की तलाश में इतनी दूर तक आकर सिर्फ बेइज्जती और बीमारी पाते हैं। आधी -तिहाई मज़दूरी बीमारी में और आखस्थकर झौंपड़ियों में रहकर खर्च हो जाती हैं। कानून में बंधुओं मज़दूर न होते हुए भी वे सबसे कडी जकड़ में फँसे हुए बंधुआ मज़दूर हैं। इनके लिए कोई फैक्टरी एक्ट नहीं हैं। लेबरवाला कानून भी नहीं हैं। सरकार में इनके लिए कुछ मिनिमम वेजस एक्ट होने पर भी उसे कार्यान्वित करने के लिए तैयार नहीं है। महिला मज़दूरों को भट्ठे पर पूरे दिन काम करने पर बड़ी मुश्किल के साढ़े पाँच रुपए मिलते हैं। वे दो सौ-ढाई सौ गज दूरी के कच्ची ईंट ढोकर भट्ठे पर पहुँचाती है। एक खेप में वे सिर ग्यारह ईंट ढोती हैं। दिन भर काम करने के बाद जितना रुपया मिलेगा उसमें से कुछ रुपये सरदार खींच लेगा। दलाल को अपना एडवांस भी वापस लेना है। मज़दूर लोगों के बीमार पड़ने पर दलाल उन्हें दूसरा एडवांस देकर उन्हें जन्म-जन्म की दासी बना लेगा। इस प्रकार मज़दूरों को रहन-सहन ठीक नहीं है। वे बंधुआ मज़दूर न होने पर भी उनके समान तो हैं। उनकी आर्थिक परिस्थितियाँ बिलकुल दयनीय हैं। इनके रहने के लिए कोई मकान नहीं है। जिस मकान के लिए वे मज़दूरी करते हैं, उसके पूरा होने तक उसी में रहते हैं। बीमारी के बाद उन्हें न आराम के लिए समय हैं न इसका कोई सवाल ही उठता है। मज़दूरों के प्रति दया का भाव बिलकुल न था। ईंट के भट्ठे अलग-अलग और बस्ती से दूर हैं। यहाँ पर भट्ठे के मालिक मज़दूरिनों से दुर्व्यवहार करते है। बीमार पडने पर मज़दूर लोग डॉक्टर के पास नहीं

जाते हैं। नेता की मौत के बाद जब लाश को पहचानना पड़ता है, तब थाने में मज़दूर उसे पहचानने के लिए तैयार नहीं है। मज़दूर थानेदार से डरते है। इंजीनियर जैसे बडे लोगों से पुलिस साझेदारी देती हैं। जब सिपाही ने लाश को लेने के लिए दस्तखत करने की बात कहा तब मज़दूरों ने ऐसा कहा - "हमसे अँगूठा न लगवाओ मुंसी जी, हम लोग बडे गरीब हैं।"[2]

'पहला पडाव' मज़दूरों के आन्दोलन का समर्थ नेतृत्व करने के लिए कोई नहीं है। मज़दूरों की समस्याओं को समझने के लिए कोई नहीं है। मज़दूरों में एकता भी नहीं है। मज़दूर लोग परिश्रम से काम करने के लिए तैयार है, लेकिन पूर्ण आत्मविश्वास से यूनियन के कार्यकलापों में भाग लेने के लिए तैयार नहीं है। वे मस्त रहना चाहते हैं। मालिकों की सेवा करके अपने जीवन को व्यतीत करने के लिए तैयार है। मालिक और दलाल दोनों मिले हुए हैं। ये लोग मिलकर मज़दूरों का शोषण करते हैं। मज़दूरों की यूनियन भी गरीब हैं और उनको वृद्धि भी गरीब हैं।"[3] यूनियन बनाना जितना मुश्किल काम है उतनी ही यूनियन को चलाना भी मुश्किल हैं। मज़दूरों को अपने अधिकारों के लिए लड़ने की क्रांति अपने-आप में आती है। मालिक मज़दूरों का शोषण करते हुए उन्हें एकत्रित नहीं होने देते हैं। मालिक के साथ पुलीस की भी साझेदारी है।

इन समस्त स्थितियों के माध्यम से लेखक ने सफलतापूर्वक मज़दूर आंदोलनों की आवश्यकता, उसके स्वरू प तथा मज़दूर संगठन में आने वाली समस्याएँ आदि को चित्रित की हैं।

पूंजीवादी लोगों के बीच मज़दूरों की स्थिति दयनीय है। ये लोग हमेशा गरीबों को लूटते हैं। गरीबों को लूटने की यह परंपरा बहुत दिनों से चली आ रही है। दुर्बल व्यक्ति के साथ ही यह सब लुटाई हो रही है। वे भी अपनी आवश्यकताओं के लिए सब कुछ कर देते हैं। मज़दूरों की लापरवाही और कम मजदूरी के कारण उनके जीवन की दयनीय स्थिति का अंकन 'पहला पड़ाव' में मिलता है। इस उपन्यास में गाँव के मज़दूरों और दूसरे कमज़ोर वर्गों को केन्द्र बनाकर सामाजिक विषमता और इनके शोषण को श्रीलाल शुक्ल ने यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया ।

गाँव और शहर में किस प्रकार मज़दूर और किसानों का शोषण रहा हैं,किस प्रकार मज़दूर लड़कियों की इज्जत से खेला जा रहा है, उसका जीवंत चित्रण 'पहला पड़ाव' में हुआ है -"आज शहर में आप मज़दूरों को बेहाली पर आइए। कुछ आसपास देहात में भट्ठों पर काम करता हैं, बाकी नई कोलोनियों के मकानों पर। बीमारी, गरीबी और बदहाली का नक्शा दिखाइए। ठेकेदार उन्हें चूसते हैं, मालिक लड़कियों की असम्मत से खेलते हैं। पुलिस उन्हें लूटने के लिए बार-बार जुए और कच्ची शराब के कर्ज मुकद्दमों में बन्द करती हैं और रिश्वत लेकर राख लौड़ियों की अस्मत लूटकर उन्हें छोड़े देती हैं।"[4]

इस तरह मज़दूरों के आर्थिक, शारीरिक और यौन शोषण भी होता हैं जिसे बडे निसहाय होकर उन्हें झेलना पड़ता है। समाज में शोषक वर्ग अधिक संगठित है। श्रमिक वर्ग अकेले है और सबसे हटकर दूर टुकड़ा हुआ है। उनकी सामूहिक परिकल्पना सबसे पहले इस अलगाव से छुटकारा पाना है। एकता से सामना करे तो वे अपने अस्तित्व को सुरक्षित बना सकते है। इस प्रकार समाज में मज़दूरों का स्थान बढ़ा सकते हैं।

वर्तमान युग में मानवीय संबंध टूट रहे हैं। उसमें पुरानी आत्मीयता, प्रेम, स्नेह नहीं रहा है। वर्तमानकाल में संबद्ध अधिकतर आर्थिक धरातल पर आधारित है। रिश्तों की अपेक्षा मनुष्य 'अर्थ' को महत्त्व देता है। 'पहला पड़ाव' में श्री लाल शुक्ल ने समाज के विभिन्न स्तरों के पारिवारिक सम्बन्ध का चित्रित किया है। इसमें उच्च वर्ग, मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग के पारिवारिक संबद्ध को लेखक ने अलग-अलग रूप से चित्रित किया है। इसमें परमात्मास्वरुप और सावित्री के पारिवारिक संबन्धों को लेखक ने अलग-अलग रुप से चित्रित किया है। इसमें परमात्मास्वरुप की

चौथी बिल्डिंग का कार्य चल रहा है। सावित्री परमात्मास्वरूप की दूसरी पत्नी है। पहली पत्नी से तीन सन्तानें हैं और उसकी मृत्यु के बाद परमात्मास्वरु प ने सावित्री से शादी की। इनके दाम्पत्य जीवन में अपनी तौर पर कोई वैमनस्य प्रतीत नहीं होता है। सावित्री एक साधारण से ग्रामीण परिवार की पुत्री है। उसका विवाह स्वतंत्रता के बाद भारत में उभरी नवधनाढय वर्ग के रंग ढंग अपना लेती है और दौलत की चकाचौंध में आत्ममुग्ध रहती है - "बचपन से उन्हें गंवार लड़की मानते रहने के कारण मैं अब तक नहीं देख पाया था कि वे अब एक भरी पूरी, सजी-धनी, प्यारी सी शहरी लड़की दरअसल, लड़की नहीं, बल्कि महिला बन चुकी है। यह महिला आज गाँव के बार पुथल के गोलाकार ढेर को सैकडों प्रकाश वर्ष के पीछे छोड़ चुकी है। सिनेमाघरों की ट्रेस सर्किल में, पंच सितारा होटलों की किसी भी कॉंकटेल पार्टी में, अखिल भारतीय महिला सम्मेलन के उद्घाटन मंच पर कहीं भी खप सकती है"[5]

समग्र रू प से 'पहला पडाव' में लेखक ने पारिवारिक संबंध का चित्रण करते हुए संयुक्त परिवार का अंकन भी किया है। नेता और जसोदा को निम्न वर्ग के परिवार का एक रूप बताया है। सत्ते एक की शिक्षित बेरोजगार है और एक छोटी नौकरी पर लगा हुआ है । भाई की शादी हो चुकी है और लेखपाल के रूप में काम कर रहा है। बहन की भी शादी हो चुकी है और उसके पति को घूस लेने के कारण नौकरी से हटा दिया गया था। सत्ते के पिता और उनके भाई के बीच पुरानी जायदाद के कारण झगडा हुआ। इसे लेकर मामले को कोर्ट ले गये। कोर्ट में केस स्थगित हुआ। चाचा के लड़के ने सत्ते के पिताजी को पीठ पर डंडे से मारा। इस प्रकार संयुक्त परिवार टूटने के बाद उत्तराधिकारियों में झगडा होने लगा। इसमें लेखक ने इसका सटीक चित्रण किया है।

'पहला पडाव' में लेखक ने राज मज़दूरों के जीवन का भी चित्रणं किया है। 'पहला पडाव' में मज़दूर उत्तर प्रदेश के बिलासपुर और मध्यप्रदेश के शंकरगढ़ से आये हुए हैं -"मध्यप्रदेश के अलग-अलग इलाकों से आने वाले और बिलासपुर के बिल्ले से पहचाने जाने वाले इन मज़दूरों की बराबर किससे हो जाए?"[6]

नेता सारे मज़दूर वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। नेता बिलासपुर से आया है। मज़दूर लोग अपनी आधी कमाई को जुआ, शराब और गॉंजे में खर्च कर देते हैं। वे लोग कम मज़दूरी पर काम करते है। उनसे काम करवाते हैं, वेतन बहुत कम देते हैं। इस प्रकार उनका शोषण होता है। आर्थिक विषमताओं के कारण लोग बीमार पडने पर भी अस्पताल नहीं जाते हैं। क्योंकि डॉक्टर की फीस देने के लिए उनके पास रु पया नहीं होते है। मजदूरिन स्त्रियाँ दूर से आकर बेइज्जती ही पाती हैं। भट्ठों पर उनका शोषण किया जाना एक सामान्य बात है। इसके अतिरिक्त रहने के लिए उन्हें कोई मकान भी नहीं मिलता और शरीर ढकने के लिए अपने पास पर्याप्त कपडे भी नहीं हैं। वे बंधुआ न होते हुए भी बंधुआ मज़दूर के समान है। दलाल लोग उनको अग्रिम देकर उन्हें श्रेणी बना देते है। एक ओर पूंजीपति उनका शोषण करते है, तो दूसरी दलाल। मज़दूर लोक निर्धन, अशिक्षित और बेसहारा भी हैं। उनको जीवन क की विवशता का यथार्थ चित्रण उपन्यास में मिलता है।

'प्रेम' और 'विवाह' दोनों एक दूसरे से संबन्धित है। विवाह का सामाजिक प्रथा है। समाज कुछ नियमों का पालन करता है। इसमें विवाह एक ऐसी प्रथा है जिससे परिवार का प्रारंभ-होता है। वस्तुतः 'पहला पडाव' में लेखक ने प्रेम और विवाह का अंकन किया है। संतोषकुमार और सावित्री दोनों एक ही गाँव के रहने वाले है। दोनों बचपन के साथी है। वे एक-दूसरे के प्रति आकर्षित थे। कुछ कारणों से शादी नहीं कर पाये। विवाह के लिए लड़के और लडकी की घर से अनुमति प्राप्त करना एक अनिवार्य शर्त है। लेखक ने इसकी पुष्टि उपन्यास में किया है। संतोष कुमार और

सावित्री किशोरावस्था में ही प्रेम में पडते है। पर कुछ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक कारण से शादी नहीं हो पाये। लेखक ने सामाजिक कारण का उत्तर देते हुए बताया है कि गाँव के लोग बहुत पास और परिचित घरों में विवाह करने के लिए पसंद नहीं करते है। गाँव में रहने वालों की एक प्रथा यह है कि वे विवाह के पहले एक-दूसरे की अच्छाइयों पर ध्यान रखते हैं। बुराइयों पर विशेष ध्यान देते है। शादी की बात उठाते हो लोग लड़के के परिवार पर ध्यान रखते हैं और लड़का या लड़की के माँ का गुण देखा जाता है - "आसपास के घरों में किसी का बाप गजेडी है। किसी का भाई देशी तमंचा बाँध कर चलता है। किसी के चाचा की देह पर सफेद दाग है। इसलिए इन सब घरों को खारिज़ करके किसी बिचौली की मार्फत बीस कोस दूर शहर के किसी अपरिचित खान दान में पनपें सी चुंगी करे अमिन को दामाद की हैसियत से तरजीह दी जाती है, जिसका बाप भले ही नहीं चूंगी का चपरासी हो पर जिसके मामा का चचेरा भाई यकीनन सेल्स टैक्स ऑफिसर होता है।"[7]

आर्थिक कारण के अंतर्गत यह बताया गया कि पहले लड़का या लड़की वालों की आर्थिक स्थिति एक जैसी थी। बाद में लड़की वालों ने उन्नति कर ली थी। इस प्रकार दोनों की आर्थिक स्तर में अंतर आ गया। इसके साथ ही आधुनिक भारतीय समाज में विवाह को सर्वाधिक प्रभावित तत्व दहेज का भी उल्लेख किया गया है। राजनैतिक कारण को दिखाते हुए लेखक ने बताया कि परमात्मास्वरुप सत्ते के गाँव से दस-बारह मील दूर के एक गाँव के छोटे जमींदार है। वे वकालत करते थे। उन्होंने पहली पत्नी की मृत्यु के बाद सावित्री से शादी करना चाहा। मनोवैज्ञानिक कारण बताने की ओर संकेत करता है जो हमारे समाज में प्रेम को विवाह में परिणत होने से रोकती है। कारण वह प्रेमबल्लभ अतिरिक्त थी। बाद में जब सीनियर वकील को इस बात का पता चला तो इस संबंध को तोड दिया था।

वर्तमानकाल में नारी को प्रताडित तथा पीडित किया जाता है। नारी के आत्म-सम्मान को महत्व नहीं दिया जाता है। 'पहला पडाव' में लेखन ने असहाय स्त्रियों के जीवन का चित्रण किया है। इस उपन्यास में मेमसाहब (जसोदा) और प्रेमवल्लभ के सीनियर की बहन दोनों विधवा तथा असहाय है। मेमसाहब विधवा होने के बाद इस संसार में असहाय होते हुए अकेली संघर्ष करती है। नेता की मृत्यु के समय मेमसाहब छठे या सातवें महीने की गर्भावस्था में थी। यहाँ से लेकर सभी उसके नाम जसोदा से पुकारने लगे। उनकी दयनीय स्थित को देखकर सत्ते ने उसे अपने गाँव में रहने के लिए कहा। इंजीनियर ने उसकी हालत देखकर काम से निकालना चाहा। इस पर परमात्मा स्वरूप ने अपने आप को पुराना ज़मीदार कहते हुए किसी को सताना नहीं चाहा। पर जब यह काम ही ना कर पायेगी तो उसके यहाँ पड़े रहने से क्या फायदा। उन्होंने यह भी कहा कि जसोदा के लिए कोई हल्का काम भी नहीं है। इस पर इंजीनियर ने उसे पन्ना लाल टावर्स में काम होने की संभावना बताते हुए जसोदा को भट्ठों पर जाने को कहा। बाद में जसोदा खुद हटने के लिए तैयार होती है। इस प्रकार नेता की मृत्यु के बाद वह सत्ते के गाँव में जाकर रहने लगती है। मातृत्व प्राप्त करने के बाद बह फिर से काम करने लगी। मिस्त्री जसोदा पर आरोप लगाता है कि वह भ्रष्ट है। उसका एक देवर है। इलाहाबाद जिले के शंकरगढ़ में पत्थर-वत्थर तोडती है। जसोदा ने वहीं जाने के तैयारी की। बाद में मिस्त्री कहने लगता है कि उसका अपनों के साथ रहना ही उचित होगा। अगर वह यहाँ बैठे रहे तो निठल्ले उसे चैन से बेठने नहीं देगा -"देवर के साथ घर - बैठा कर ले तो उसका पाप कटे। यहाँ रहेगी तो निठल्ले उसे चैन से बैठने योजे ही देंगे। कातिक के कंकरों की तरह उसे जगह पिछुआए रहते हैं।"[8]

वकील आनंद साहब की विधवा बहन और प्रेमवल्लभ के बीच प्रेम सम्बन्ध है। लेखक ने इसके बारे में ज़्यादा वर्णन नहीं किया है। जब आनंद साहब

को इस मामले का पता चलता है तो वे अपनी बहन को ससुराल भेज देते है। इस प्रकार लेखक असहाय स्त्रियों का चित्रण किया है।

इस उपन्यास में भारतीय न्याय व्यवस्था की कमज़ोरियों और राजनीतिक समस्याओं का चित्रण भी मौजूद है।

इंजीनियर साहब को रिश्वत के जुल्म में काम से बाहर निकाला गया था। इस विषय में उनकी मुकदमेबाजी चल रही थी। इंजीनियर ने अपने राजनीतिक संबन्धों की सहायता से स्थगित आदेश प्राप्त कर लिया। इससे सरकार उससे काम न करके मुफ्त में पैसा देने का आदेश दिया। अन्त में उनके खिलाफ कोई सबूत न पेश करने के कारण इंजीनियर साहब को मुक्त छोड दिया और उन्हें उचित दंड भी न दे सका । वर्तमान भारतीय समाज में ऐसे कई अपराधियों को बिना दण्ड दिये मुक्त कराता है, ये लोग भारतीय न्याय व्यवस्था की कमज़ोरियों का फायदा उठाकर विमुक्त हो जाते है, और भ्रष्टाचार जारी रखते हैं। इसका एक ज्वलंत उदाहरण इंजीनियर के माध्यम से लेखक ने सटीक ढंग से प्रस्तुत किया है।

'पहला पडाव' में राजनीति में दांव-पेंच, धोखेबाजी, अवसरवादिता, पूंजीपतियों का वर्चस्व आदि का भी चित्रण किया है। स्वतंत्रयोत्तर काल में उभरे नयी पूंजीपति वर्ग के राजनीति के प्रति विशेष लगाव लेखक ने परमात्मास्वरुप के द्वारा चित्रित किया है। "दरअसल, इंदिरा जी ने देश के लिए कई बडे-बडे काम किया है। हिंदुस्तानी का स्वभाव ही ऐसे है कि अपने बाप का भी एहसान नहीं मानता, इंदिरा जी का न माने तो कोई नई बात नहीं। इन हाई कोर्ट के जजों के सही सबक उन्होंने ही सिखाया था।"[9]

इस प्रकार अपने व्यक्तिगत लाभों के लिए राजनीति का गुणगान करने वाले वर्तमान पूंजीपतियों पर अपने व्यंग्य बाण से श्रीलाल जी ने चोट फुँचाया है।

समाज शब्द अत्यंत व्यापक तथा उसकी समस्याएँ भी व्यापक हैं। उपन्यास समाज का प्रतिबिंब है, जिसमें मानवीय जीवन और चेष्टा का विशुद्ध चित्रण होता है। उपन्यास मुख्यतः समाज से संबन्धित है इसलिए इसका स्वरूप भी सामाजिक होता है। उपन्यास समसामयिक समाज का सबसे बडा कोश है। यह संपूर्ण सामाजिक चेतना को अपने में समेटा व्यक्ति के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का माध्यम है। श्रीलाल शुक्ल प्रगतिशील लेखक है। वे वर्तमान सामाजिक व्यवस्था से असन्तुष्ट होकर इस व्यवस्था को बदलना चाहते हैं। 'पहला पडाव' उपन्यास भी इन सामाजिक समस्याओं को लेकर समस्त समाज की छोटी सी समस्या को महत्व देकर,शुक्ल की सामाजिक विचारधारा को उजागर करने में पूर्णतः सफल हुआ है अतः 'पहला पडाव' एक सामाजिक उपन्यास है।

संक्षेप में कहें तो भारतीय प्रशासन, राजनीति, शिक्षा, न्यायिक व्यवस्था, मज़दूरों के शारीरिक, मानसिक, आर्थिक शोषण आदि का सजीव चित्र शुक्ल जी ने इस उपन्यास में खींचा है। साथ ही इक्कीसवीं सदी का विकास ओर उसकी समस्याओं का भी कहीं -कहीं उल्लेख हुआ है। 'पहला पडाव स्वतंत्र रूप से आधुनिक समाज में जिये -भोगे हुए यथार्थता को ही उजगार करता है।

संदर्भ

1. भाषा मासिक पत्रिका अप्रैल-मई पुं. स 32
2. अधूरा स्वर्ग - भगवतिप्रसाद वाजपेयी, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली संस्करण,
3. पहला पडाव, श्रीलाल शुक्ल पु. 62
4. आधुनिक हिंदी निबंध,डॉ. भुवनेश्वरी चरण सक्सेना, पु.230
5. आधुनिक हिंदी निबंध, डॉ.भुवनेश्वरी चरण सक्सेना, पुं 62
6. आधुनिक हिंदी निबंध, डॉ.भुवनश्वरी चरण सक्सेना, पुं62
7. पहला पडाव, श्रीलाल शुक्ल पु. 22
8. वही, पृ. 24
9. वही, 2

Faculty, Central University of Kerala
Capital Centre, Thiruvananthapuram

नासिराशर्मा की कहानियों में नारी अस्मिता के प्रश्न

डॉ.वीणा.जे

नवीं शति से लेकर आज तक हिन्दी कहानी साहित्य वर्तमान जीवन यथार्थ को- कुंठा, पीडा, पलायन, विस्थापन, निराशा जैसी तिक्तताओं को साथ लेकर नई दिशाओं की खोज करता है। स्वातंर्त्योत्तर काल से लेकर आज तक मानव जीवन में नई-नई चुनौतियाँ, तेज़ी से बढ़ती जा रही है। समाज के दर्पण होने के नाते, समकालीन साहित्य में इसका प्रतिबिंबित होना अत्यंत स्वाभाविक है।

उत्तराधुनिक युग विभिन्न समस्याओं का युग है, जैसे वृद्धों की समस्या, बाल जीवन से संबंधित समस्या, किन्नरों की समस्या, दलितों एवं आदिवासियों की समस्या, स्त्री जीवन से संबन्धित समस्या आदि। उपर्युक्त सारी समस्याओं में नारी अस्मिता से संबंधित समस्याएँ प्रथम गणनीय है। अर्थात् इन सारी सामाजिक समस्याओं में स्त्री जीवन की समस्याएँ ही मुख्य हैं। जीवन से संबंधित सारी समस्याओं केलिए आज का साहित्यिक नाम है 'विमर्श'। स्त्री विमर्श (नारी विमर्श) चाहे वह उच्च स्तर की हो, या निम्न स्तर की पाठकों के समक्ष उसकी स्वीकार्यता की कोई कमी नहीं रही है। स्त्री जीवन से संबन्धित गहरे अनुभव पुरुष लेखकों के मुताबिक लेखिकाएँ ही अत्यंत सहज एवं स्वाभाविक ढंग से लिख सकती है। इसका उत्तम नमूना है, नासिरा शर्मा की कहानियाँ। "आप ने अपनी कहानियों में समाज में व्याप्त कुप्रथाएँ अंधविश्वास, अन्याय, नारी शोषण एवं आडंबर में निहित खोखलेपन को प्रकट कर जीवन के यथार्थ से ही परिचित कराती है।"[1] स्त्री जीवन को आपने नज़दीकी से देखा-परखा है, और चित्रित भी किया है। एक महिला कहानीकार होने के नाते नाज़िरा जी को स्त्री की अनुभूतियों की विशेष पहचान है, जिसे अपनी तूलिका के ज़रिए इन्होंने सामाजिक फलक पर प्रस्तुत करने का सहज प्रयास किया है। अपनी रचनाओं के विषय में इन्होंने ऐसा कहा है- "मैं तो केवल दो हाथ दो पैर, दो आँख, एक दिल और दिमागवाले इन्सान को पहचानती हूँ । वह जहाँ भी जिस सीमा, जिस परिधि में जीवन की संपूर्ण गरिमा के साथ मिल जाए, वही मेरी कहानी का जन्म होता है।"[2] इनके उपर्युक्त शब्दों से स्पष्ट है कि उनकी कहानियों में अग्निपथ पर आगे उडने की क्षमता है। नासिरा जी की कहानियों में स्त्री त्याग,प्रेम, ममता, वात्सल्य, कर्मनिष्ठा आदि का प्रतीक है। वह जननी है, सृजनशीला भी। ज़िन्दगी में इतनी सकारात्मकता हासिल करने के बावजूद हर पल उसका शारीरिक, मानसिक,वैचारिक एवं बौद्धिक शोषण होता रहता है, नासिरा जी को स्त्रियों की यह दुरवस्था ज़रा भी स्वीकार्य नहीं । इसी कारण वह अपनी कहानियों के स्त्री कथापात्रों के माध्यम से उनपर होनेवाली अत्याचारों के विरुद्ध शोषण के विरुद्ध विद्रोह करती है। उनकी अधिकांश कहानियों में मुस्लिम औरतों की पीड़ा और उनके दर्द को संवेदनात्मक अनुभूति की कसौटी पर कसकर उन्हें खरा उतारने का भरसक प्रयास द्रष्टव्य है। वह अपनी लेखनी के साथ स्त्री जीवन की गहराइयों में घुसपैठकर अपनी सशक्तवाणी से उन्हें आकाश की अनंत विशालता में चक्कर लगाने की शक्ति देती है। उनकी कहानियाँ इस सत्य का साक्षात्कार करती है कि 'आँसू' स्त्रियों को आभूषण नहीं, इसलिए उन्हें

पोंछ कर उसे 'शक्ति स्वरूपा' होकर संगठित होना ज़रूरी है, और नारी शोषण के विरोध में उन्हें अपनी आवाज़ बुलंद करनी ही चाहिए ।

'दूसरा कबूतर' नामक अपनी कहानी में नासिरा जी ने बहुपत्नीत्व से उत्पन्न समस्या को उजागार किया है। विदेश में काम करनेवाला युवक एक भारतीय लड़की से शादी करके उसे विदेश में अपने साथ ले आता है। वही रहकर उस स्त्री को पता चलता है कि वह पहले शादीशुदा है, और तीन बच्चों के बाप है। वह एकदम टूट जाती है। शादी के समय उस स्त्री के मन में कितनी ख्वाहिशें होती होगी। अंत में धैर्य धारण कर दोनों ने मिलकर साजिश कर उन्हें 'तलाक' देकर प्रतिशोध करती है। दौलत है, उसी पर तो सारी इतराहट है। फिर तो बचेगी सिर्फ तनख्वाह और जमा होगी पूँजी.... भूल जाएँगे मिलयाँ तीसरा इश्क और शादी।"[3] इस कहानी में नासिरा जी ने स्त्री शाक्तीकरण के बीज बोने का प्रयास किया है।

'पत्थर गली' कहानी संग्रह की बहुचर्चित कहानी है- 'बावली' जिसकी नायिका सलमा पढ़ी-लिखी एवं कामकाजी औरत थी। उचित समय पर खालिद नामक युवक से उसकी शादी हुई। सलमा का विवाह पूर्व जीवन अभावग्रस्त तथा उपेक्षाओं से भरा था। इसलिए जब उसकी शादी हुई तो उसकी खुशी का कोई टिकाना नहीं रहा। उसकी राय में- शादी के बाद पहली बार ज़िंदगी में अपने पैरों के नीचे मैं ने सख्त मज़बूत ज़मीन पायी थी। अपने घर अपने लोगों का सुख पहली बार मिला था। प्यार और विश्वास ने मुझे जीना सिखाया था... ।"[5] लेकिन साथ साल के बाद 'बेऔलाद' होने के कारण उसके जीवन की सख्त मज़बूत ज़मीन उखाड दी गयी, और ज़िंदगी भर रूढ़िग्रस्त समाज तथा परिवार की अवहेलना के शिकार हो गयी । इसी कारण वह अपने पति को दूसरी शादी केलिए प्रेरित करने को मज़बूर हो गयी । इस तरह पति को बाँटकर स्वयं यातनापूर्ण अधूरी ज़िंदगी के अंधकारपूर्ण कुएँ में अपने को ढकेल देने के लिए लाचार हुई। 'ताबूत' कहानी में समाज की निम्न वर्ग के मुस्लिम परिवार की पाँच अविवाहित लड़कियों को अभावग्रस्त ज़िंदगी की क्रूर नियती के साथ कुत्सित मानसिक प्रवृत्तियों (पारिवारिक शोषण) का शिकार होना पडता है । गरीबी ही इस कहानी में खल नायक की भूमिका निभाती है ।

'पतझड का फूल' 'शामी कागज़' कहानी संग्रह की एक हृदय स्पर्शी कहानी है, जिसमें वैधव्य जीवन की दुरवस्था, तथा प्रेम विवाह एवं अनमेल विवाह की कठिनाइयों का चित्रण है। इसकी नायिका 'अनाहिता' दूसरी शादी से इनकार कर अपने परिवारवालों का संरक्षण अपने कंधों पर ले लेती है। वह घरवालों के साथ आराम से ज़िन्दगी गुज़रना चाहती है। लेकिन छोटी बहन की शादी के बाद घर का वातावरण अशांतिपूर्ण हो जाता है। उस विधवा की ज़िन्दगी कष्टपूर्ण हो जाती है। यह एक ऐसी कहानी है, जो नारी जीवन को आत्मनिर्भर बनने और स्वस्थ मानसिक निर्णय लेने का संबल देती है।

'शामी कागज़' कहानी संग्रह की एक लम्बी कहानी है, शामी कागज़, जिसमें नारी संवेदना की अन्य पहलू को वाणी मिली है। कहानी के नायक मुहसिन और नायिका पाशा की शादी अभी-अभी हुई थी। कुछ ही दिनों के सुनहले दाम्पत्य के बाद एक दुर्घटना में मुहसिन की मौत हो जाती है। पाशा एकदम अकेली हो जाती है, और एक बंद कमरे में अपनी दुखपूर्ण ज़िंदगी गुज़रने लगती है। बाद में दिमाग बिगड जाने के कारण उसे अस्पताल में रहना पड़ता

है। मनोरोग से मुक्तहोकर लौट आने के बाद वह एक नर्सरी स्कूल में काम करने लगती है। इसी बीच एक रिश्तेदार महमूद उसके साथ शादी का प्रस्ताव रखता है, तो वह उस प्रस्ताव को यह कहकर टाल देती है- "मैं भी कोई शामी कागज़ थोड़े ही हूँ कि जब ज़रूरत पडी, उसे धोकर दूसरा फरमान लिख दिया।"[4] उसका यह कथन निश्चय ही स्त्री जीवन में एक नया दृष्टिकोण पैदा करेगा। इस कहानी द्वारा नासिरा जी एक ओर विधवा स्त्री की मानसिकता को व्यक्त करती है, तो दूसरी ओर इस स्त्री के स्थान पर पुरुष को रखकर सोचने के लिए पाठकों को प्रेरित भी करती है। अपनी हर कहानी में नासिरा जी का स्त्री विमर्श इसलिए प्रासंगिक है कि इन की कहानियों में नैतिकता है, ईमानदारी है, संस्कार की महीन बुनावट है। वह इस्लाम धर्म के आधार पर भारतीय मुसलमान परिवारों की त्रासदी की कहानियों को प्रस्तुत करती है, साथ ही साथ मुस्लिम स्त्री अधिकार के हर एक पहलू का उद्घाटन भी करती है। नासिरा जी के अभिप्राय में आँसू तथा आत्महत्या किसी भी समस्या का समाधान नहीं। ये दोनों जीवन की इति है। हमें इति नहीं गति की ज़रूरत है। इसलिए स्त्रियों को अपनी सारी 'नकारात्मकताओं' को दूर फेंक कर ज़िंदगी को 'सकारात्मकताओं' को साथ जीकर दिखाना ही करणीय है। 'दूसरा चेहरा' कहानी हमें यही संदेश देती है कि औरत की मंज़िल में सिर्फ पुरुष नहीं, वह अपने आप में संपूर्ण व्यक्तित्त्व की इकाई है।

'कागजी बादाम' कहानी में नासिराजी ने मध्यवर्गीय लोगों की आर्थिक दुरवस्था और तज्जनित नारी शोषण को चित्रित किया है। 'ताबूत' कहानी भी अभावग्रस्त ज़िंदगी के कारण होनेवाले नारी शोषण को चित्रित करती है ।

इस तरह नासिरा जी की कहानियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री समाज में लडाई अपने लिए नहीं, बल्कि मानवीय अधिकार केलिए लड रही है। समाज की यह गलत धारणा है कि उसकी लडाई पुरुषों के विरोध में है। इस पितृसत्तात्मक समाज में वह अस्मिता को बनाए रखने की लड़ाई में है। वह जान चुकी है कि अपनी क्षमता को पहचानना है, और इसके अनुसार कार्यरत है।

नासिरा जी की कहानियाँ, चाहे वह उच्च स्तर के स्त्री जीवन से संबंधित हो, चाहे निम्न स्तर के, हमें यही संदेश देती है कि स्त्री महज त्वचा नहीं पुरुषों के समान उनका भी अपना व्यक्तित्त्व है, आत्मसम्मान है, आत्म निर्भर होकर जीने का उन्हें भी अधिकार है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि नासिरा शर्मा जी का कथा साम्राज्य बहुत व्यापक है, जिनमें भारत,ईरान, पाकिस्तान तथा अन्य अरब राष्ट्रों के स्त्री जीवन का सीधा-सच्चा दस्तावेज़ है, जिन्हें पढ़ कर सशक्त नारी की आँखें भी भर आती है, यही सच है ।

संदर्भ ग्रंथ- सूची

1. डॉ.सोनल नंदनूरवाले - नासिरा शर्मा की कहानियों में नारी विमर्श-पृ.106
2. नासिरा शर्मा - शामी कागज़ पृ.3 (दो शब्द)
3. नासिरा शर्मा खुदा की वापसी (कहानी संग्रह) दूसरा कबूतर (कहानी) पृ.130
4. नासिरा शर्मा - शामी कागज़ पृ.97
5. नासिरा शर्मा - पत्थर गली (बावली कहानी) पृ.21
6. साठोत्तर हिन्दी कहानियों में नारी :डॉ.पुष्पा गायकवाड, विकास प्रकाशन, कानपुर

सह आचार्या, हिंदी विभाग
सनातन धर्म कॉलेज, आलप्पुष़ा, केरल

कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में चित्रित नारी

सुलोचना. के

भारतीय संस्कृति में नारी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वह एक ही साथ माता, बेटी, बहन, सास, बहु आदि कई भूमिकाएँ परिवार में निभाती है। वैसा देखा जाए तो नारी ही परिवार की नींव है। कन्या की सुन्दरता, वधु की सरलता और माता की पवित्रता से ही नारी की इकाई परिपूर्ण होती है।"1 परिवार, समाज या राष्ट्र के निर्माण में या विकास में नारी की भूमिका महत्वपूर्ण है। उसी के कारण ही सभी आत्मीयता से दूसरों के साथ जुड जाते हैं। इसलिए कहा गया है कि जहाँ भी करुणा है, जहाँ भी दया है वहाँ स्त्री मौजूद है।"[2] समकालीन हिन्दी साहित्य में नारी की हर तरह के संकट और समस्याओं को ज़्यादा प्रमुखता देकर साहित्यकार साहित्य सृजन करने लगे हैं।

समकालीन साहित्यकार साहित्य के प्रति प्रतिबद्ध होकर साहित्य सृजन करते हैं। वे अपनी स्थिति और समय को देखकर व्यथित होते हैं। हिन्दी साहित्याकाश की चमचमाती तारिका कृष्णा अग्निहोत्री अनंत महिला साहित्यकारों में से एक जलता हुआ हस्ताक्षार है। उनका कहानी साहित्य संवेदनशील मन की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। अपने जीवन के लंबे सफर में कितने ही अनुभवों से उसे गुजरना पडा, अकेले भोगा हुआ सफर, रास्ते में मिली अनंत बाधाएँ, हज़ारों व्यक्ति विचित्र परिस्थितियाँ और उनमें से जीने की ललक को न सिर्फ कृष्णा जी ने भोगा है अपितु उनकी कहानियों के पात्रों ने भी। मन्नत, अनुत्तर, गाउन, आदि कहानियों के ज़रिए लेखिका ने नारी जीवन के विविध पहलुओं को चित्रित किया है।

मन्नत कहानी नारी जीवन के दयनीय स्थिति को दृष्टि में रखकर रचित है। कहानी के सबसे सशक्त चरित्र कुसुम का है। कहानी के अंतर्गत अपमानित, उपेक्षित एवं शोषित नारी के यौवन से वृद्धावस्था तक का चित्रण है, जिसे पढकर मन में करुणा जागृत होती है।

अपनों से ही जब व्यक्ति कट जाता है तब उसकी क्या दशा होती है, इसका अंकन 'मन्नत' कहानी में किया है। हम अपनी संतानों के लिए मन्नतें माँगते हैं, परंतु वही संताने हमें घर से खाली हाथ निकाल देती हैं। प्रस्तुत कहानी का पात्र कुसुम की हालत भी ऐसा ही है। घर से बाहर निकाली गई कुसुम मंदिर के सीढी पर बैठकर भीख माँग रही थी। अचानक एक भिखारिन ने डांटा कि यह उसके बेटे की सीढी है। उसका चेहरा ऐसा दिख रहा था जैसे मन्दिरों के आसपास की सारी जगह भिखारियों ने खरीद ली हो। एक जमाना था जब "दुखी गरीब ब्राह्मणी माँ को घर बैठे सीधा मिल जाता था। क्योंकि असहायों की सहायता करना भी हर परिवार अपना कर्तव्य समझता था।"[3] आजकल जमाना एकदम बदल गया है। प्रस्तुत कहानी के कुसुम पहले अपने बच्चों के लिए मन्नतें माँगा करती थी। उसने पूरी जन्दिगी पति और बच्चों के लिए कुर्बान किया था।

कुसुम को अपनी खेती और बरसों से बसाये घर के टीन और दिवारों से भी ममता है। आजकल कुसुम की बहू तो बार-बार यही कहती कि ईशर इतनी लंबी उम्र न दे कि औरों पर बोझ न बन जाए। चाय और कचोडियाँ बना-बनाकर घर-गृहस्थी जमायी, उसी घर में चाय तक उसे नहीं मिलती थी। बदलते जमाने के कारण लोग बदल जाते हैं। बहू को पसंद कर लाते समय सास ने न जाने क्या-क्या सपने देखे थे। वही आज दाने-दाने के लिए तरस रही है। कुसुम के तीन

बच्चे जब शादी शुदा हो गए तभी से वहअकेली हो गयी।बूढी विधवा होने के कारण अपनेही घर में मेहमान जैसे बनगयी। कुसुम को अपने पति लक्ष्मण के शब्द हमेशा याद आती है। लक्ष्मण हमेशा कहा करता था कुसुम तुम रोया मत कर ..... मैं तेरी आँखों में आँसू नहीं देख सकता।"[4]

प्रस्तुत कहानी की कुसुम पहले अपने परिवार और बच्चों के लिए मन्नतें माँगती है, लेकिन अब वह ईश्वर से अपनी मौत की मन्नत माँग रही है। तीन-तीन बेटों की माँ होकर, इतनी बडी जायदाद की मालिकिन होकर भी उसे भूखी-प्यासी नर्मदा के किनारे मरना पडा। इस प्रकार अकेलेपन की अन्तर्पीडा को सहनेवाली वृद्धा का मार्मिक चित्रण'मन्नत'मेंहुआ है।

कृष्णा जी की एक और कहानी है 'अनुत्तर'। उन्होंने यह कहानी बडी सूझ-बूझ के साथ लिखी है। कहानी में देह व्यापार करनेवाली वेश्याओं के जीवन की विवशता एवं उनके दुख-दर्दको शीला नामक पात्र के ज़रिए सामने रखा है। 'शीला' कथा का केन्द्र है। कहानी मेंक? लगर्ल बनने के पीछे जो आर्थिक कारण होते हैं उन पर प्रकाश डाला है। कालगर्ल के रूप में शीला को दिखाया है। उसका असली नाम शीला पीटर था। परंतु वह अपना नाम सुधा शर्मा लिखती थी। उसके माथे की बडीसी बिंदी एवं सीधी सादी वेशभूषा उसे सुधा शर्मा बने रहने में मदद देती है।

कहानी में देह व्यापार करनेवाली औरत के पीछे के कारणों पर मुख्यतः आर्थिक कारणों पर प्रकाश डाला है। जो स्त्रियाँ देहव्यापार में संलग्न हैं उन्हें 'खिलवाडी' कहते हैं और जो स्त्रियाँ घर में काम करती है उन्हें भाभी कहा जाता है। नौकरी न कर सकने पर परिवार ......और परिवार बिना जीने की परेशानी इसलिए यकीन मानो हमारी कितनी ही सभ्य व सुशील लडकियाँ कॉलगर्ल्स बन जाती है।"[5] कहानी के शीला पीटर एक नमूना है। शीला जब चौदह साल की हुई तो उसकी माँ ने पैसे लेकर एक पंजाबी से शादी करवा दी, जिसकी पहली भी पत्नी थी। फिर भी शीला ने पति के साथ पूरी ईमानदारी बरती। उसके पति को जब लकबे का अटैक आ गया तब उसकी पत्नी ने पैसे देने से इनकार कर दिया। तो शीला ने अपने पति से यही पूछा-मैं तुमसे उम्र में बहुत छोटी हूँ और अधिक सुन्दर हूँ तभी तो पत्नी बुलाकर रखैल से बदतत्तर स्थिति तुमने मेरी बना दी। अब बताओ मैं कैसे अपना पेट भरूँ?"[6] शीला अपने पेट भरने के लिए दर-दर भटकने लगी। तभी जनरल स्टार के मालिक वर्मा ने सबसे पहले उसे सहारा दिया और बदले में प्रतिमास दो सौ रुपए देता रहा। बाद में उसे कई अजनबी आदमियों के साथ रहना पडा।

कहानी में शीला किसी यात्रा के बीच एक सहयात्री से अपना बुरा अनुभव बाँटती है। सहयात्री ने तो यह सब छोडकर एक नयी ज़िन्दगी जीने का सुझाव दिया तो शीला ने खुले आम उससे कहा कि यदि आपको मुझसे भरोसा है तो आप ही मुझे हाउस गवर्नेस रख लीजिए। "मैं तो अभी से इस धंधे से घृणा करती हूँ। कोई मुझे आया बनादे तो मैं आज इससे उबर जाउँ। लेकिन शंका ...... और शंका। हमारी अच्छी नीयत पर किसे भरोसा है?"[7] यह सुनते ही सहयात्री फँस गए। सहयात्री के पास शीला के लिए कोई जवाब नहीं है। पराये लोगों को उपदेश देना तो सरल है पर उनके लिए कुछ करना आसान नहीं है।

प्रस्तुत कहानी में कथनी और करनी में ज़मीन आसमान का फर्क दिखाने वाले लोगों का चित्रण सहयात्री के माध्यम से दिखाया है। सुझाव तो कोई भी दे सकते हैं पर अपना धर्म का पालन बहुत कम लोग ही करते हैं। यहाँ सहयात्री लडकी होने पर भी शीला की मदद नहीं करती। उसकी कहानी पूरी सुनकर सहानुभूति तो करती है। मगर उसे निजी जीवन से

संबंध नहीं रखना चाहती है।

'गाउन' कहानी मध्यवर्गीय कामकाजी नारी की छोटी इच्छा में उपस्थित बाधाओं को अंकित करनेवाली कृष्णा अग्निहोत्री की एक सशक्त कहानी है। कहानी के मुख्य पात्र है 'मधु'। वह चाहे कितना भी कमाएँ सब अपने ससुरालवालों के लिए खर्च करना पडता है। शादी के दस साल हुई है अब तक अपनी पसंदीदार गाउन पहनकर पति के साथ रात नहीं बिता पाई। मधु का बहुत बडा दुख यह है कि सालों से कमाती है, पर एक पल भी अपनेलिए नहीं जी पाती है।

मधु की जिंदगी की पहली और आखिरी ख्वाहिश है कि कमरा पूरी तरह नयी नयी चीज़ों से सजाकर पति के पसंदीदार चीज़ों से खुद सजकर पति के साथ एक पल बिताना। लेकिन उसे हर पहली तारीख को सारी कमाई सास को देना पडता है। कामकाजी की भाग दौड में उसके कई अबार्शन हो गए हैं। सास इससे बडी प्रसन्न हो जाती है कि उसके काम में बाधा नहीं आएगी। और पूरे 'पे' यानी पैसे ले आयेगी।

कहानी के अंत में मधु उस दिन की कल्पना करने लगती है कि गाउन पहनकर गाना गुनगुनाकर पति काशी के लिए 'बेड टी' बनाने में उसे कितना आनंद आयेगा। अपनी पूरी कमाई से नए पलंग, ड्रेसिंग टेबल, कुर्सियाँ और नए नए चमचमाती कपडे आदि से सजाकर लाल रंग गाउन पहन कर पति के बाहों में चैन की साँस लेती है। इस सुन्दर कल्पना में लीन मधु को अचानक सास के कठोर शब्द सुनाई दिया - क्यों जी, महारानी साहिबा, कब तक शयन फरमायेंगी ? काशी कब से खाना माँग रहा है। कौन से नौकर है जो देंगे? उठो जी। उठो, उठो चौका देखो, मुझे पूजा करनी है।"8 डरी-सी घबरायी हुई अपराधिन सी मधु उठी और शीघ्रता से भागती हुई दबे स्वर से बोली, रात तबियत ठीक नहीं थी, सुबह आँख लग गई। क्षमा करें, अभी सब निपटाये देती हूँ।"9 वह फिरसे कोल्हू का बैल बन गयी। भारत में ऐसी लाखों बहुएँ है, जो इसी राह पर चल रही है। उनका अपना छोटा सपना तक पूरा हो नहीं सकता।

कृष्णा जी ने अपनी रचनाओं में नारी की विविध समस्याओं का अंकन गंभीरता से उभरा है।नारी के प्रति उनका अत्यंत उदार दृष्टिकोण है। आधुनिक काल में नारी डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, अध्यापक, समाज-सेविका इतना ही नहीं रक्षा, शिक्षा, न्याय, राजकीय सभी क्षेत्रों में अपने पैर जमायी है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं रहा जहाँ नारी की भूमिका न हो। परंतु आज भी इस वैज्ञानिक युग में बहुत बडी संख्या में नारी का कई प्रकार के शोषण का शिकार होना पड़ रहा है।

नारी के पारंपरिक रूपों के साथ शिक्षित और अशिक्षित, कामकाजी नारी, अन्याय अत्याचार को सहनेवाली तथा उनका विरोध कर स्वतंत्र जीवन जीनेवाली या पारंपरिक नियमों का पालन कर अन्याय को सहनेवाली नारी की मुखर वेदना और मनोदशा को आधुनिक लेखिकाओं के साथ-साथ कृष्णा जी ने भी अपनी कहानी में वाणी प्रदान की है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में नारी-पृ.सं- 44
2. कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में नारी- पृ.सं- 44
3. कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में नारी- पृ.सं- 106
4. कठौती : कहानी समग्र (भाग प्रथम)- पृ.सं-444
5. कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में नारी- पृ.सं-163
6. कृष्णा अग्निहोत्री की कहानियों में नारी- पृ.सं- 163
7. कठौती : कहानी समग्र (भाग प्रथम)- पृ.सं-276
8. कठौती : कहानी समग्र (भाग प्रथम)- पृ.सं-119
9. कठौती : कहानी समग्र (भाग प्रथम)- पृ.सं-119

शोध छात्रा, सरकारी महिला महाविद्यालय,
तिरुवनन्तपुरम, केरल।

आत्मकथा

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

देवयानम्

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

चौथा देवपद
मधुर स्मृतियाँ

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

घर के बाहर जानेवालों को लौट आकर तालाब में स्नान करना था। उसके बाद ही भोजन मिलता था। हम बच्चों को भी इस नियम का पालन करना था। अतः दोपहर तथा शाम को स्कूल से आकर नहाने के बाद ही मुझे खाना मिलता था। शामको नहाते समय मैं साथियों के साथ देर तक जल-क्रीड़ा करता था। उसके बाद हम सब मिल कर मंदिर जाते, आरती के समय भगवान के दर्शन करते। घर आकर संध्या समय के नाम-जाप के बाद मैं गृह-पाठ करता था और भोजन कर अपने भाई-बहन के साथ सो जाता था। अपने आठवें वर्ष की उम्र में मेरा उपनयन[1] (1. ब्राह्मण बालकों का छोटी उम्र में यज्ञ-सूत्र या जनेऊ धारण करने की वैदिक क्रिया।) एवं समावर्तन संस्कार हुआ था। इस वैदिक क्रिया के महत्व के बारे में उस समय मैं बिलकुल अनभिज्ञ था। किळिमानूर राजवंश के बड़े पंडित, वैयासिकी नाम से विख्यात ग्रंथ के अध्येता श्री.सी.आर केरलवर्मा द्वारा रचित "त्रैवेदिका संध्यापद्धति" नामक ग्रंथ का संशोधन कर उसकी भूमिका रचने का दायित्व मुझे मिला था। तभी अपनी वैदिक संस्कृति की पवित्रता का मूल्य मेरी समझ में आयी।

हर साल घर में श्रावण के महीने में बारह दिन तक देवी की त्रिकाल पूजा (सबेरे, दोपहर एवं संध्या) बड़े धूम-धाम से हुआ करती थी। श्रीगणेश की पूजा से यह अनुष्ठान शुरू होता था। महाविष्णु की पूजा, सहस्रनाम जाप आदि होते थे। उन्हें विशेष प्रकार के अनेक नैवेद्य चढ़ाये जाते थे। बड़ी मात्रा में फूलों की ज़रूरत होती थी। कुल मिलाकर बारह दिन की यह पूजा घर का कोई उत्सव था; विशेषकर हम बच्चों के लिए।

वल्यत्तु नामक हमारे घर के किसी दूसरे अहाते में साँपों की प्रतिष्ठा की गई थी। हर साल उनकी पूजा में घर का प्रत्येक सदस्य भाग लेता था और सबके लिए दावत भी होती थी।

घर के छोटे-बड़े, सभी का जन्मदिन समारोह भी बड़े आह्लाद से मनाया जाता था।

उसी अवसर पर अनेक ब्राह्मणों एवं अतिथियों का स्वागत-सत्कार होता था। इसी तरह गाँव के मंदिर के भगवान के उत्सव के अवसर पर खानदान में सभी नाते-रिश्तेदार आते हैं और घर का वातावरण संतोष एवं आह्लादपूर्ण उत्सव जैसा हो जाता था।

आश्विन महीने की भक्तिपूर्ण, पवित्र देवी पूजा घर को आध्यात्मिक एवं अलौकिक शोभा प्रदान करती है। दुर्गाष्टमी, महानवमी तथा विजयदशमी के दिन विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की उपासना अत्यंत भव्य एवं अलंकारों से होती थी। विजयदशमी के दिन पूजा की मंगलपूर्ण समाप्ति पर मेरे पिता जी बच्चों का 'विद्यारंभ' कराते थे। खानदान के स्वर्गवासी पूर्वजों का श्रद्धा-कर्म भी बड़ी निष्ठा एवं प्रणामपूर्वक किया जाता था। इसके अलावा श्रावण महीने की अमावास्या के दिन सभी पूर्वजों का एक साथ श्राद्धकर्म का विशेष अनुष्ठान भी किया जाता था।

मेरे दादाजी श्री सुब्रह्मण्यन मूत्ततु बड़े पंडित एवं आयुर्वेद शास्त्र के निष्णात थे। घर एवं मंदिर के काम के साथ ही वे आयुर्वेद की दवाइयाँ बनवाते थे और अपने किसी मित्र के चिकित्सालय को देते थे।अपनी मृत्यु का मुहूर्त्त निकट आये तो उन्होंने घरवालों से कहा - "ज़मीन पर जल्दी कुश बिछाओ और मुझे उस पर लिटाओ। मेरा अंतिम समय आ गया है।"यह सुनकर सब लोग रोते रहे तो उन्होंने आज्ञा दी। [2] (2. अंतिम तीन सांसों में से पहला बिस्तर पर, दूसरा पुत्र के हाथों में लेट कर और तीसरा कुश के बिछावन पर लेट कर निकल जाना है।)इस प्रकार सामाजिक विश्वास के अनुसार हमारे दादा जी का अंतिम सांस कुश के बिछावन पर लेट कर निकल गया।

दादा जी के बाद घर संभालने का दायित्व हमारे चाचा श्री भास्करन मूत्ततु ने अपने कंधों पर ले लिया। वे तो तिरुवनंतपुरम में स्थित उच्च न्यायालय के कुल सचिव थे। अपनी नौकरी से निवृत्त हो अब वे परिवार के साथ गाँव लौट आये थे। उनकी पत्नी थी श्रीमती चेल्लमा और उनके तीन-तीन बेटे-बेटियाँ थीं जिनके नाम थे - बी.बी.नायर, बी.पी.नायर, विजयकृष्ण, अम्मिणीयम्मा, शारदाबाई और कमलाबाई। अम्मिणियम्मा की बेटी विजयलक्ष्मी के साथ हमारे घर के श्री पी.एस.शंकर की शादी हुई थी। वेच्चूर नामक गाँव (कोट्टयम जिला) के श्री.वी.के. मूत्ततु ने शारदाबाई की शादी की थी।

यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि हमारे चाचा जी ने मलयालम भाषा की सुप्रसिद्ध आख्यायिका 'धर्मराजा' का संग्रह प्रकाशित किया था जिसके रचयिता श्री सी.वी.रामन पिल्लै हैं।

(क्रमशः)

केरल हिंदी प्रचार सभा के कालिकट शाखा कार्यालय एवं महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव का उद्घाटन केरल सरकार के माननीय मंत्री श्री. अहम्मद देवर्कोविल कर रहे हैं।

फीजी में आयोजित 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन में सम्मानित संस्था केरल हिंदी प्रचार सभा के मंत्री को अहम्मद देवर्कोविल द्वारा अभिनन्दन।

वरिष्ठ अनुवादक एवं केरल ज्योति हिंदी मासिक पत्रिका के मुख्य संपादक प्रो डी तंकप्पन नायर का टोलिक (तिरुवनंतपुरम) द्वारा अनुमोदन का दृश्य

RNI No. 7942/1966
Date of Publication 15-06-2023
Date of posting : 26th of Every month

KERAL JYOTI

JUNE 2023

Vol. No. 60, Issue No.03
Regn. No. KL/TV(S) 381/2022-2024
Price Rs. 25/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

सुदीर्घ सेवा के पश्चात् सेवानिवृत्त केरल हिंदी प्रचार सभा के कर्मचारियों के विदाई समारोह के दृश्य

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.ब. मधु जी द्वारा प्रकाशित; राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित तथा प्रो.डी.तंकप्पन नायर द्वारा संपादित।

Published by the Secretary, Adv. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695 014; Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695 014 and edited by Prof. D. Thankappan Nair